37

गया नगरपालिका एवं ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी

मुझमें सामाजिक या राजनीतिक कार्यों में भाग लेने की रुचि सदा से रही है। **गया जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन** के प्रारंभ से ही मैं उसमें संलग्न था और बाद में उसका सारा बोझ मेरे सिर पर ही आ गया था। हिंदू विश्वविद्यालय में भी उन दिनों प्रत्येक पद के चुनाव होते थे। मैं बिरला होस्टल में रहता था और उस होस्टल के कॉमन रूम के सेक्रेटरी के पद का प्रत्याशी था। मैं सेकंड इयर का विद्यार्थी था और पूरी तरह आश्वस्त था कि मुझे चुन लिया जाना सुनिश्चित है। जैसा मैं अपने उस काल के साहित्यिक जीवन के संस्मरणों में लिख चुका हूँ, विश्वविद्यालय का शायद ही कोई हिंदीभाषी विद्यार्थी ऐसा रहा हो जो मेरा नाम न जानता हो। ऐसी अवस्था में होस्टल के एक छोटे-से पद के लिए भला मुझे कौन पराजित कर सकता था ! मैंने इसके लिए कन्वैसिंग करना भी उचित नहीं समझा। यही नहीं चुनाव के दो-तीन दिन पूर्व मैं अपने घर गया चला गया और चुनाव के बाद ही बनारस लौटकर आया। आने पर मुझे सूचना मिली कि मैं थोड़े से मतों से एक थर्ड इयर के विद्यार्थी द्वारा हरा दिया गया हूँ। इस घटना ने मुझे यह शिक्षा दे दी कि चुनाव में केवल प्रसिद्धि ही काम नहीं आती, वोटरों की खुशामद करना और चुनाव-कार्य का संयोजन भी महत्त्वपूर्ण है। 1950 में गया नगरपालिका का पहली बार वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव होना था। इसके पूर्व मकान-मालिकों को और इन्कम टैक्स आदि देनेवालों के विशेष वर्गों को ही मतदान के अधिकार थे। मैंने अपने वार्ड से नामांकन-पत्र दाखिल कर दिया। मेरे वार्ड से एक प्रतिष्ठित वकील भी उसके लिए प्रत्याशी थे। उन्होंने मुझे चुनाव से हटाने के लिए मेरे मित्र कामता बाबू को पकड़ा। कामताबाबू के कहने से मैंने अपना नाम वापस ले लिया। किसी कारण से वह चुनाव टल गया और उसके 5-7 महीनों बाद दुबारा चुनाव-प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इस बार कामताबाबू की सहमति से मैंने पुनः चुनाव में अपने को

प्रत्याशी बनाया। मैं बिना किसी पार्टी के सहयोग के, निजी हैसियत से चुनाव लड़ रहा था। कांग्रेस पार्टी ने, जिसका देश में सर्वत्र शासन था, प्रत्यक्ष रूप से इस चुनाव में भाग न लेने का निश्चय किया था यद्यपि प्रच्छन्न रूप में उसके स्थानीय नेता पूरा सूत्र-संचालन कर रहे थे। कांग्रेस ने चेयरमैन के लिए गयासुद्दीन नामक एक मुस्लिम बस-स्वामी को अपना समर्थन दे रक्खा था और तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्णसिंहजी ने गया पधारकर उन्हें अपना आशीर्वाद भी दे दिया था। गयासुद्दीन असेंबली में कांग्रेस के विरोध में खड़े हुए थे परंतु चेयरमैन बना दिये जाने के आश्वासन पर उन्होंने वहाँ से अपना नाम वापस ले लिया था। वे मेरे ही वार्ड से मेरे मुकाबले में खड़े थे। विश्वविद्यालय में अपना प्रचार न करने के कारण चुनाव की पराजय से मैने यह तो सीख ही लिया था कि वोटरों के बीच में कन्वैसिंग करना अर्थात् स्वयं को वोट देने के लिए अनुरोध करना चुनाव जीतने के लिए परमावश्यक है परंतु मैं यह नहीं जानता था कि कार्यकर्ताओं का संयोजन करना और एक सुगठित पार्टी का समर्थन पाना भी चुनाव में अत्यधिक महत्त्व रखता है। मैं नगर में अपने परिवार की ख्याति और साहित्यिक और कविरूप में अपनी निजी ख्याति के बल पर आश्वस्त था। मेरे विरुद्ध सोशलिस्ट पार्टी के प्रत्याशी के रूप में दाँतों के एक डाक्टर खड़े थे। दूसरे एक वकील स्वतंत्र रूप से खड़े थे। इन दोनों से मुझे कोई डर नहीं था। मेरी मुख्य मुठभेड़ काग्रेंस-समर्थित अनेक बस-सेवाओं के मालिक, पूँजीपति गयासुद्दीन से थी। चुनाव के एक सप्ताह पूर्व मैं टाइफाइड बुखार से पीड़ित हो गया और बाहर आने-जाने में असमर्थ हो गया। मेरी पीठ पर कोई राजनीतिक संगठन तो था नहीं, जो कुछ दौड़धूप करनी थी, मुझे ही करनी थी और मैं अस्वस्थ होकर अपने घर में वंदी हो गया था। हिंदुओं की संख्या मेरे वार्ड में मुसलमानों से काफी ज्यादा थी परंतु हिंदू प्रत्याशी तीन थे जब कि मुसलमान प्रत्याशी गयासुद्दीन ही अकेला था। उसे मुसलमानों के वोट तो मिलने ही थे, कांग्रेस के प्रच्छन्न समर्थन के कारण हिंदुओं के भी अधिकांश वोट मिलने थे। उसके पास पैसों का भी बल था। उसने देहात से बहुसंख्यक व्यक्तियों को पैसों के बल पर बोगस मतदान के लिए बुला रक्खा था। गयासुद्दीन भी जानता था कि उसकी एकमात्र मुठभेड़ मुझसे ही थी, अतः मेरे हिदू-वोट बँटवाने के लिए वह दूसरे प्रत्याशियों का प्रचार भी स्वयं करवा रहा था। मैं अपने घर में लेटा-लेटा यह सब सुनकर सिवा दाँत पीसने के और क्या कर सकता था! बुखार पर तो मेरा वश नहीं था। अंत में चुनाव के दिन मैंने, बुखार उतर जाने पर,

बाहर निकलने का साहस किया। शरीर काफी दुर्बल था परंतु चुनाव तो चुनाव ही होता है। उस पर आदमी तन-मन-धन, सब लुटा देता है। मैंने मतदान केंद्रों पर जाकर वोटरों की लंबी कतारें देखीं जो सब गयासुद्दीन का परिचयपत्र लिए वोट देने को खड़ी थीं। मेरा तो कोई परिचय पत्र देनेवाला या कार्यकर्ता था नहीं, परंतु अन्य प्रत्याशियों के परिचय-पत्र देने के स्थानों पर भी मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। मैंने पहली बार अनुभव किया कि केवल लोकप्रियता चुनाव में काम नहीं आती। कार्यकर्ताओं को जुटाना पड़ता है और कार्य का संयोजन करना भी होता है। मैं चाहकर भी अस्वस्थता के कारण वह सब नहीं कर सका था। किसी राजनीतिक पार्टी का भी मुझे सर्मथन नहीं था जिसके कार्यकर्ता मेरा काम सँभाल लेते। परंतु अब यह सब सोचने का कोई परिणाम नहीं था। यह सब तो पहले ही सोचना था। राजस्थानी में एक कहावत है—

अग्गिल बुद्धि बानिया, पिच्छल बुद्धि जाट,
तुरत बुद्धि तुरकड़ा, ब्राह्मण संपटपाट

अर्थात् बनिये को पहले से सूझ जाता है, अहीर को अवसर बीतने पर सूझता है, मुसलमान को ठीक समय पर सूझ जाता है और ब्राह्मण को कभी नहीं सूझता। निश्चय ही यह कहावत किसी ब्राह्मण पंडित ने अपने वर्ग की अव्यावहारिक बुद्धि पर परिहास करने को विनोदवश जोड़ी है, अन्यथा ब्राह्मण तो तीन काल आगे की बात भी सोच लेते हैं। मै पिच्छल बुद्धि के अनुसार पहले की अपनी कार्यशैली पर पछता रहा था परंतु **अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत**। एक-दो परिचित व्यक्तियों ने कहा 'हम आपको वोट देना चाहते हैं, आपके परिचयपत्र देनेवाले कार्यकर्ता कहाँ हैं !' मैंने कहा 'भाई ! मेरा कोई कार्यकर्ता नहीं है। आप मेरे विरोधियों से परिचयपत्र ले लें और अंदर जाकर वोट मुझे दे दें। परिचयपत्र लेने से इस बात के लिए आप नैतिक या वैधानिक रूप से बाध्य नहीं हैं कि उसे ही वोट दें जिसका परिचयपत्र आपके पास है।' अंत में एक-दो घंटे रिक्शे पर सभी मतदान केंद्रों पर घूमने के बाद हताश होकर हारा-थका मैं अपने घर लौट आया। किसी भी मतदान-केंद्र पर मुझे अपने लिए कोई वोटर नहीं दिखाई दिया। मैं जीतने की आशा छोड़ चुका था और यह चुनाव, जो मेरे जीवन का पहला सार्वजनिक चुनाव था, एक प्रकार से हार चुका था। लेटा-लेटा मैं विचार करने लगा, 'चुनाव तो मैं हार रहा हूँ परंतु चमत्कार भी होते हैं और जिन्हें हम असंभव या चमत्कार मानते हैं वे सब उस सर्वनियंता के लिए क्षण मात्र का खेल है। वह मुझे चुनाव जिता भी सकता है।

पर वह ऐसा क्यों करने लगा! उसे कैसे मनाया जाय !' मुझे बाबर और राणा साँगा के युद्ध का स्मरण हो आया। कहते हैं कि उस युद्ध में बाबर की प्रायः पराजय हो गयी थी। उसने ईश्वर के आगे प्रार्थना की कि वह जीवन भर शराब नहीं छूयेगा, यदि इस युद्ध में उसकी विजय हो जाय। परमात्मा ने उसकी आवाज सुन ली और युद्ध का पासा पलट गया। मैंने भी लेटे-लेटे प्रार्थना करनी आरंभ की, 'मैं तो शराब नहीं पीता, अतः यही प्रतिज्ञा कर सकता हूँ कि मैं यदि चुना गया तो ईमानदारी से जनता की सेवा करूँगा।' भगवान ने मेरी प्रार्थना भी सुन ली। आधे दिन के बाद नगर में खलबली मची कि गयासुद्दीन गया नगर के चेयरमैन हो जायँगे क्योंकि कांग्रेसवालों ने उनसे ऐसा समझौता कर लिया है। 'गया एक धार्मिक नगर है अतः किसी मुसलमान को यहाँ का चैयरमैन नहीं होना चाहिए', न जाने कैसे यह भावना लोगों के मन में छा गयी। ऐसा प्रचार करना तो अलग, मैंने इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की थी। चौक, नगर का मुख्य व्यापारिक केंद्र होने के कारण मेरे वार्ड में दुकानदारों की संख्या ही प्रमुख है जो अधिकांशतः हिंदू हैं। उन सभी लोगों ने अपनी-अपनी दुकानें बंद कर दीं और मेरे पक्ष में वोट देने को मतदान-केंद्रों की ओर दौड़ पड़े ताकि नगर को एक मुसलमान चेयरमैन पाने से बचाया जा सके। जो भाड़े के टट्टू बोगस या नकली मत देने आये थे वे सभी हिंदू थे जो पैसे के लालच में मतदान-केंद्रों पर गयासुद्दीन की ओर से मतदान के लिए कतार लगाये खड़े थे। उनके कान में भी धर्म की दुहाई देकर यह मंत्र फूँक दिया गया कि वे अंदर जाकर मुझे ही वोट दें।

घंटे दो घंटे में बाजी पलट गयी यद्यपि यह बात उस समय निश्चित रूप से सामने नहीं आयी। मतदान की समाप्ति पर संध्या समय लोगों की सूचना के आधार पर मैंने मन में यह अनुमान लगाया कि मैं जीत भी सकता हूँ। फिर भी मैंने यह बात प्रकट रूप से नहीं व्यक्त की क्योंकि गयासुद्दीन को अपनी विजय का पूरा भरोसा था और मैं ऐसा दावा करके अंत में पराजित होने पर दुहरी शर्म में नहीं पड़ना चाहता था। यद्यपि दोपहर के बाद सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता, अपने प्रत्याशी की निश्चित पराजय जानकर तथा वकील साहब भी अपने परिचय-पत्र-केंद्र को वीरान देखकर मेरे पक्ष में आ जुटे थे और अपने वोटरों से मुझे ही बोट देने को कह रहे थे, परंतु उनके वोटों की संख्या नगण्य थी। मेरी मुख्य सहायक तो जनता की वह लहर थी जो आधे दिन के बाद मेरे लिए मतदान करने को आ जुटी थी तथा जिसने देहात से आये भाड़े के टट्टू

हिंदू मजदूरों को मुझे वोट देने को प्रेरित कर दिया था। एक घटना और भी थी जो मेरी सहायक हो गयी थी यद्यपि उसे मैंने पहले विशेष महत्त्व नहीं दिया था। मेरे वार्ड से दो प्रत्याशी चुने जाने थे। एक महेश सिंह नामक प्रमुख पहलवान भी मेरे वार्ड का प्रत्याशी था और मैंने उससे अनचाहते भी यह समझौता कर लिया था कि हमारे वोटर हम दोनों को ही वोट दें। कुछ लोग जो उसको वोट देने से हिचकिचा रहे थे, उनसे भी मैंने स्पष्ट कह दिया था कि जो मुझे वोट देकर दूसरा वोट उसे नहीं देगा वह मुझपर विश्वासघाती होने का आरोप लगवायेगा और इस कीमत पर मैं चुनाव नहीं जीतना चाहता हूँ। महेशसिंह के समर्थकों का भी दूसरा वोट मुझे मिला और इस प्रकार उसने भी चुनाव जीतने में मेरी सहायता की। जिस दिन वोटों के बक्से खुलने थे उस दिन विजय की आशा में गयासुद्दीन ने अपने सामने की पूरी सड़क पर शामियाने खड़े करवा दिये थे और बड़े-बड़े कड़ाहों में हलवा बनवा रक्खा था जिसे प्रत्येक व्यक्ति को बाँटना था। बत्तियों और आतिशबाजी का भी पूरा प्रबंध था। प्रत्येक वार्ड के बक्से खुलने के बाद अधिकारियों ने अंत में हमारे वार्ड के बक्से खोले। वोटों की गणना के बाद मुझे और महेशसिंह को विजयी घोषित किया गया। गयासुद्दीन के पूरे मुहल्ले में मातम छा गया और पता नहीं उन हलवे के कड़ाहों का वितरण कैसे किया गया। शामियानों में अँधेरा छाया था और चौकियाँ खाली पड़ी थीं।

एक प्रकार से तो यह घटना भी चमत्कार की श्रेणी में ही मानी जायगी परंतु यह बात मैं पाठकों के निर्णय पर छोड़ता हूँ।

म्युनिसिपल कमिश्नर चुने जाने के बाद, चुने गये कमिश्नरों द्वारा चेयरमैन के चुनाव की बारी थी। राय हरिप्रसाद जो पहले भी नगरपालिका के चेयरमैन रह चुके थे, इस पद के प्रत्याशी थे। वे अंग्रेजों के शासनकाल में केंद्रीय विधायिका के भी सदस्य रह चुके थे। एक समय, वे गया नगर-कांग्रेस के भी सर्वोच्च नेता थे परंतु वह स्थान उन्होंने अपनी दुर्बलता से खो दिया था अतः बाद में वे हिंदू महासभा के मंच से जा सटे थे। उन दिनों ऐसे बहुत से नेता जो महात्मा गाँधी की त्याग-तपोनिष्ठ कार्यप्रणाली से कतराते थे, हिंदू महासभा जैसी सांप्रदायिक पार्टियों में अपना राजनीतिक गुबार निकालते थे जहाँ जेल जाने का संकट नहीं था और शासक वर्ग की भी प्रच्छन्न कृपा मिलती थी। राय हरिप्रसाद मेरे पिता की उम्र के थे और उनकी मेरे परिवार से भी घनिष्ठता थी। बचपन में उनके संबंध की एक घटना मुझे अभी तक ज्यों की त्यों याद है। राय हरिप्रसाद गाँधीजी के नमक सत्याग्रह में भाग लेकर जेल गये थे परंतु तीन-चार

दिन के बाद ही माफी माँगकर जेल से बाहर चले आये थे। शहर में यह हल्ला था कि राय साहब की नाक कट गयी। हमारी दुकान पर भी मेरे ताऊजी हँस-हँसकर कह रहे थे कि रायसाहब की नाक कट गयी। मैं 6-7 वर्ष का बालक इसको शाब्दिक रूप में ले रहा था। इसके 8-10 दिनों बाद हमारे बाग में एक पार्टी में राय हरिप्रसाद भी आये थे और जब वे मेरे ताऊजी से बातें कर रहे थे तो मैं उत्सुक होकर बारबार उनके नाक को देख रहा था जो कहीं से भी कटी हुई नहीं दिख रही थी। अंत में मैंने ताऊजी से कहा 'आप तो कह रहे थे कि रायसाहब की नाक कट गयी, यह तो ज्यों की त्यों है।' रायसाहब ने पलटकर मेरी ओर देखा और ताऊजी ने झेंपते हुए मुझे डाँटा 'चुप बदमाश, भाग यहाँ से।' और यह कहते हुए वे रायसाहब को दूसरी बातों में लगाने का प्रयत्न करने लगे। रायसाहब ने भी ऐसा अभिनय किया जैसे मेरी बात उन्होंने सुनी ही नहीं।

नगर के बड़े-बड़े जमींदारों में भी रायहरिप्रसाद साहब की गणना होती थी और होमियोपैथी की प्रारंभ में निःशुल्क और बाद में सशुल्क चिकित्सा द्वारा भी उन्होंने काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी। वे बड़े अक्खड़ स्वभाव के थे। उनकी चेयरमैनी में नगर में अच्छा काम हुआ था इसलिए उनका इस क्षेत्र में कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था। कांग्रेस तो प्रत्यक्ष रूप से नगरपालिका के चुनाव में भाग ले नहीं रही थी और अपने अप्रत्यक्ष प्रत्याशी की पराजय के बाद इस संबंध में तटस्थ हो गयी थी, अतः राय हरिप्रसाद का चेयरमैन चुना जाना एक प्रकार से निश्चित-सा था। उनकी जमात के 7-8 सदस्य चुने भी गये थे। मैं भी पारिवारिक संबंधों के नाते तथा उनके वार्ड का सदस्य होने के कारण उन्हींका समर्थक था और मेरे साथ चुना गया पहलवान महेशसिंह तो उनका ही आदमी था। महेशसिंह ने उनकी कोठी के बगल में उनकी बगिया की जमीन पर चंदा करके एक अखाड़ा भी बनवा रक्खा था जो रायसाहब का अखाड़ा कहलाता था। बचपन में मैं भी उस अखाड़े में कसरत करने जाया करता था क्योंकि मेरे पिताजी का विचार था कि प्रारंभ में कसरत करने से शरीर आगे के लिए मजबूत हो जाता है। पारिवारिक समृद्धि के उस युग में उन्होंने मुझे कसरत कराने के लिए तपसीसिंह नामक एक पहलवान भी कपड़े की दुकान पर प्यादे के रूप में बहाल कर रक्खा था जो मुझे प्रातःकाल रायसाहब के उपर्युक्त अखाड़े में ले जाकर कसरत कराया करता था। रायसाहब मेरे वार्ड से नहीं, एक दूसरे वार्ड से कमिश्नर चुने गये थे। चेयरमैन के लिए सरकार द्वारा मनोनीत छः सदस्यों की घोषणा हो जाने पर तथा चुनाव की तिथि निश्चित हो जाने पर इस संबंध

में दौड़धूप प्रारंभ हो गयी। मैंने युवकदल नामक एक पार्टी बनाई जिसमें नवयुवकों को बटोरना शुरू किया। कुल सदस्यों में मेरी इस पार्टी में 12 सदस्य हो गये। मेरा वाइस-चेयरमैन बनने का प्रयत्न था क्योंकि चेयरमैनी के लिए तो एक प्रकार से राय हरिप्रसाद का नाम निश्चित-सा ही था। मैं इस पार्टी की नियमावली बनाकर रायसाहब के पास गया और अनुरोध किया कि वे इस पार्टी की सदस्यता स्वीकार कर लें और इसके नेता के रूप में इसके नियमों को मानते हुए पार्टी के अनुशासन में चेयरमैनी का पद सँभालें। राय हरिप्रसाद मेरी बात सुनकर उखड़ गये। बोले, 'गुलाबबाबू, आप सिंह को जंजीरों में जकड़ना चाहते हैं। मैं किसी पार्टी-वार्टी का बंधन नहीं स्वीकार कर सकता।' मैं उनकी बातें सुनकर चुपचाप उठकर चला आया और मैंने निश्चय किया कि इस उद्धत और अभिमानी व्यक्ति को किसी भी कीमत पर चेयरमैन नहीं बनने देना चाहिए। यह चेयरमैन बन गया तो हम सभी सदस्यों की स्थिति नगण्य हो जायगी। मेरी पार्टी के बारहों सदस्य भी मेरे विचार से सहमत हो गये क्योंकि रायसाहब के अधिनायकवादी स्वभाव से सभी आतंकित थे। राधामोहन प्रसाद नामक हमारी पार्टी में एक वरिष्ठ सदस्य भी थे जो गया षड्यंत्र केस में क्रांतिकारी कार्यों के लिए आजन्म जेल की सजा भोग चुके थे और देश के स्वतंत्र होने के बाद ही छोड़े गये थे। मैंने अपनी पार्टी में उन्हें चेयरमैन बनाने के निर्णय की घोषणा की जिसे सभी ने सराहा और उनके साथ वाइस चेयरमैन के रूप में मेरा नाम स्वीकृत हुआ। पूरे जोश के साथ चेयरमैनी के चुनाव का युद्ध प्रारंभ हो गया। एक ओर राय हरिप्रसाद की जमात में हिंदू सभाई 8-10 सदस्य थे जो उनके समर्थन से चुने गये थे। दूसरी ओर गयासुद्दीन की पार्टी के 7-8 सदस्य थे जो अपने नेता के हार जाने के बाद नारोबाबू नामक एक दूसरे चुने हुए सदस्य के नेतृत्व में संगठित हो गये थे और तीसरी और मेरी पार्टी के 12 सदस्य थे। सरकार द्वारा मनोनीत 5-6 सदस्यों पर हम तीनों दल छीना-झपटी कर रहे थे क्योंकि बहुमत बनाने में उनका योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गया था। कुल सदस्यों की संख्या सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों को मिलाकर 36 थी। 19 सदस्यों को जो पार्टी पा लेती वही नगर पालिका का शासन चलाती। पार्टी या लोकतंत्रात्मक प्रणाली से निर्मित दल तो मेरा युवक-दल ही था, बाकी तो दो व्यक्तियों के समर्थकों के दो गुट मात्र थे। अंत में चुनाव का दिन आ गया। चुनाव के दिन मुझे विवश होकर वाइस चेयरमैन का पद गयासुद्दीन की जमात के नवाब सईद अहमद कादरी नामक एक मुस्लिम जमींदार के लिए छोड़ना

पड़ा। नगरपालिका की बैठकों के सभापति का पद उसी जमात के नेता नारोबाबू को दिया गया। नारोबाबू ने मनोनीत सदस्यों को भी अपनी ओर मिला रक्खा था इसलिए उनकी शक्ति प्रायः 12 सदस्यों की हो गयी थी। नारोबाबू के 12 सदस्यों के मिलने से हमारी शक्ति 24 की हो गयी थी जब कि रायसाहब के पास कुल 12 हिंदू सदस्य थे। चुनाव का परिणाम वही हुआ जो होना था। रायसाहब पुरी तरह पराजित हो गये और राधामोहन चेयरमैन तथा नवाब सईद अहमद कादरी वाइसचेयरमैन चुने गये। मुझे मेरे आदरणीय मित्र कामताबाबू ने बधाई देते हुए कहा कि आपने पद छोड़ दिया परंतु पावर पा लिया। नगर में मुझे ही वास्तविक विजयी माना गया क्योंकि पार्टी का मुखिया मैं ही था और चुनाव की सारी दौड़धूप मेरे द्वारा ही की गयी थी। राधामोहन तो बहुत सीधे, सरल व्यक्ति थे। जेल से छूटने पर वे सौ रुपये महीने की डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की नौकरी द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। वे विशेष लिखे-पढ़े भी नहीं थे और अत्यंत शांत स्वभाव के होने के कारण नगरपालिका की बैठकों में उत्तर-प्रत्युत्तर का क़ाम भी मुझे ही करना होता था। सरकारी पत्राचार और मकानों के वादविवाद में वकीलों की बहस भी मैं ही सुनता था तथा उनके फैसले भी मैं ही लिखता था। सुबह-शाम चेयरमैन के साथ नगरपालिका के सदस्यों का जमघट भी चैयरमैन के साथ मेरी दुकान पर ही लगा रहता था अतः नगरपालिका के बाहर नगर में असली चेयरमैन मुझे ही समझा जाने लगा था। रायसाहब व्यंग्य से चेयरमैन मुझे ही कहते थे क्योंकि उनकी जमात के द्वारा किये गये आरोपों का उत्तर मैं ही देता था।

चेयरमैन का चुनाव होने के बाद नगरपालिका की विभिन्न समितियों के चुनाव की बारी थी। पार्टी के नेता होने के कारण मैंने किसी भी समिति में अपना नाम नहीं दिया था और अपने दल के मिलेजुले सदस्यों को, जिनकी संख्या अब 24 हो गयी थी, सभी समितियों में चुनवा दिया था। नगरपालिका की समितियों के अतिरिक्त नगर में 2 अन्य महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र संस्थाएँ थीं जिनमें नगरपालिका से प्रतिनिधि जाते थे। एक थी ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी, तथा दूसरी थी—तीर्थस्थान-संरक्षण के लिए बनी लॉजिंग हाउस कमेटी। उन कमेटियों में मैंने अपने को सदस्य के रूप में चुनवा दिया था। वाटरवर्क्स कमेटी का अध्यक्ष, पदेन नगरपालिका का चेयरमैन ही होता था अतः उसमें वाइस-प्रेसिडेंट का पद महत्त्वपूर्ण होता था क्योंकि वही प्रेसिडेंट के अधिकार का उपयोग करके उसकी ओर से वाटर वर्क्स के सारे कार्य का संचालन करता था। ज्वायंट वाटर

वर्क्स में अध्यक्ष समेत कुल 7 सदस्य होते थे जिनमें तीन नगरपालिका के सदस्य, एक डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर पदेन, एक सिविल सर्जन पदेन, तथा राज्य विधानपरिषद् का या विधानसभा का सरकार द्वारा मनोनीत एक सदस्य होता था। ज्वायंट वाटर वर्क्स के उपाध्यक्ष के पद के लिए नगरपालिका के हमारी पार्टी के सदस्य और नगर के एक प्रमुख डाक्टर मंजूर साहब प्रत्याशी थे। उनकी प्रतिद्वंद्विता में दूसरे व्यक्ति मेरी युवकपार्टी के प्रारंभिक सदस्य ब्रजकिशोर प्रसाद थे जिन्हें हम 'राजा' के नाम से जानते थे। ये दोनों भी मेरे साथ नगरपालिका की ओर से ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी के सदस्य चुने गये थे। अपनी ही पार्टी के दो सदस्यों के इस बराबरी के संघर्ष में मैं तटस्थ था। राजा का पक्ष प्रबल होता देखकर मीटिंग में ही अचानक डा. मंजूर ने मेरा नाम प्रस्तावित कर दिया। उनके पक्ष के 2 वोट और चेयरमैन राधामोहन के वोट से मैं आसानी से चुन लिया गया क्योंकि विधान-सभा के मनोनीत सदस्य-साहित्यकार मोहनलाल महतो 'वियोगी' अनुपस्थित थे। इस प्रकार 6 सदस्यों की उपस्थिति में मैं बहुमत से चुन लिया गया और वाटर वर्क्स कमेटी, जिसका काम सारे नगर में पानी की सप्लाइ करना था, का सारा भार अनसोचे ढंग से मेरे सिर पर आ गया। मैं नगरपालिका का चेयरमैन न होते हुए भी उसके सारे काम का संचालन करता था और पार्टी को बनाये रखने की भी सारी चिंता मेरी ही थी जो मेढ़कों को तौलने के लिए बटोरते रहने जैसा ही दुष्कर कार्य था। इस अवस्था में ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी का भी पूरा बोझ सँभालने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर वैधानिक रूप से आ गयी थी इसलिए यह नगरपालिका का 4 वर्षों का समय एक प्रकार से मेरा पूरा अवैतनिक सेवा-कार्य हो गया था। नित्य राजसरकार के पत्रों का उत्तर भी मैं ही लिखवाता था। इस काल में न तो मैंने एक भी कविता लिखी, न किसी व्यापारिक कार्य में रुचि ली। यह राजनीतिक कार्य एक प्रकार का नशा था जो मुझे पूरी तरह अपने में उलझाये रहता था। अधिकार का मद कितना मादक होता है और कैसे लोग राजनीतिक संघर्ष में सर्वस्व होम कर देते हैं, यह बिना इस अनुभव के, मैं नहीं जान सकता था। मैंने शेयर के व्यापार में प्रतिदिन बढ़नेवाले अर्थलाभ के नशे का अनुभव किया था। अब नगरपालिका और ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी के कार्य द्वारा राजनीति की शराब की मादकता का अनुभव कर रहा था। धन की बाढ़ के समय व्यक्ति पर कैसा नशा छा जाता है, अपनी ऐसी मनःस्थिति की एक झलक यहाँ दे रहा हूँ। 1946 में हमारी बनारस की संस्था **प्रसाद परिषद्** के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध नेता डा. संपूर्णानंदजी

उत्तर प्रदेश के अर्थमंत्री चुने गये। उस समय माननीय गोविंदवल्लभजी पंत प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। मैंने कलकत्ता से बेढबजी को सूचना देकर अपनी ओर से संपूर्णानंदजी के अभिनंदनार्थ **प्रसाद परिषद** की बैठक आमंत्रित की। ठीक समय पर मैं बनारस पहुँचा और मैंने बेढबजी से पूछा कि संपूर्णानंदजी को अर्थमंत्री के पद का वेतन कितना मिलेगा। उन्होंने कहा कि पंद्रह सौ रुपये प्रतिमास जो सारे भारत में कांग्रेसी मंत्रियों के लिए निर्धारित हैं, वे ही उन्हें प्राप्त होंगे। उस समय मेरी आय शेयरों के बढते हुए भाव के कारण प्रतिदिन दो हजार रुपये के लगभग थी। मुझे हँसी आने लगी। भला ऐसे मंत्रिपद से क्या लाभ ! मेरी दृष्टि में संपूर्णानंदजी की अगाध विद्वत्ता की जो छवि थी वह उनके मंत्रिपद पाने से किंचित् भी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं बन सकी। ऐसा था धन के मोह का चश्मा। उसी तरह इस बार सारे नगर के प्रशासन के गौरव का जो मद आँखों में छा रहा था उसके संमुख व्यापार और धन मेरी दृष्टि में महत्त्वहीन हो गये थे। नगरपालिका का प्रशासन एक प्रकार से छोटे-मोटे राज्य के संचालन जैसा ही होता है। नगर पालिका के 150 स्कूल नगर में अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के नाम पर चलाये जाते थे। प्रत्येक स्कूल में 5-7 शिक्षक होते थे। इस प्रकार प्रायः 1100-1200 शिक्षक नगर में थे जिनमें से कोई न कोई हर मोड़ पर टहलता हुआ या चाय पीता हुआ, जब भी नजर उठती, दिख जाता। कुलियों की और सफाई करनेवालों की संख्या तो हजारों में थी। नगरपालिका में इस ओर से उस ओर तक पाँव रखते हुए ही सलामी का मिलना प्रारंभ हो जाता। बाजार में भी सर्वत्र नगरपालिका की दुकानें थीं जो सादर बैठाकर मुफ्त सदलबल नाश्ता पानी कराने के लिए उत्सुक रहतीं। इन सब के अतिरिक्त, सारे सरकारी अधिकारी अपने किसी-न-किसी कार्य के लिए नगरपालिका की सेवा के आकांक्षी रहते थे। पानी की समस्या भी सब के लिए रोजमर्रे की समस्या थी। राज्य-विधायिका के सदस्य और यहाँ तक कि राज्य के मंत्री भी नगर से संबंधित अपने किसी कार्य के लिए समय-समय पर फोन करते रहते थे। राज्य के मुख्यमंत्री से लेकर सभी मंत्रियों से सीधा संपर्क भी रहता था। यह सब उस राजमद को प्रेरित करनेवाली शराब के घूँट थे। दरवाजे पर सुबह से शाम तक दरख्वास्त लिये हुए लोगों की भीड़ देख कर बैंकबैलेंस का विचार भी जी में नहीं आता था। मुख्यमंत्री और अन्य मंत्रियों का आना-जाना तो नगरपालिका में लगा ही रहता था परंतु मुझे भारत के तत्कालीन रेलमंत्री लाल बहादुर शास्त्री (बाद में प्रधानमंत्री) के साथ पूरा दिन बिताने का और पूज्य विनोवा भावे का नगरपालिका की ओर

से स्वागत करने का भी दो बार सौभाग्य प्राप्त हो सका था। बिहार के अर्थमंत्री डा. अनुग्रह नारायण सिंह का तो मैं विशेष कृपापात्र था। मुख्यमंत्री के चुनाव में वे डॉ. श्रीकृष्णसिंहजी से पराजित हो चुके थे परंतु गया नगर में गयासुद्दीन की हार को मुख्यमंत्री श्रीकृष्णसिंहजी की हार समझा गया था और मेरी जीत अनुग्रह बाबू की जमात की जीत मानी गयी थी। अनुग्रह बाबू गया जिले के औरंगाबाद नगर के निवासी थे अतः यह प्रचारित किया गया था कि अपने जिले में तो उनका ही वर्चस्व है। प्रदेश की राजनीति उन दिनों ऐसी थी कि किसी भी व्यक्ति का उपर्युक्त दो महारथियों में से किसी एक से संबंधित होना मान ही लिया जाता था, चाहे उसमें सत्यांश कुछ भी न हो। अनुग्रह बाबू ने तो मेरा नाम ही 'नगरपालिका' रख दिया था, क्योंकि अपने भाषणों में मैं म्युनिसिपैलिटी की जगह नगरपालिका शब्द का प्रयोग करता था।

मुझ पर उनके स्नेह का एक कारण और भी था। मेरे पिताजी ने अपनी गया नगर की बिजली सप्लाई कंपनी में, उसके प्रारंभिक काल में, उन्हें प्रबंधसमिति में डाइरेक्टर रख लिया था। उस समय वे प्रदेश के एक नेता थे, मंत्री नहीं बने थे। इसके पूर्व कि मैं नगरपालिका के अपने जीवन का आगे कुछ विवरण प्रस्तुत करूँ, वाटर वर्क्स कमिटी की अपने चुनाव के बाद की एक घटना बताना चाहता हूँ जो काफी रोचक है। मेरे वाटर वर्क्स के वाइस-प्रेसिडेंट चुने जाने के बाद मैंने अनुभव किया कि कई अर्थ में वाटरवर्क्स के काम में बहुत अधिक अधिकार-मोह की गुंजाइश थी। नगर में पानी की सप्लाई नदी के पानी से होती थी। फल्गु अंत-सलिला कही जाती है। गर्मी में वह बिल्कुल सूखी रहती है परंतु थोड़ी सी बालू हटाने पर पानी का स्रोत मिल जाता है। पानी की कमी से नये पानी के नल घरों में लगाने की आज्ञा बड़ी कठिनाई से मिल पाती थी और लोगों को बरसों प्रतीक्षा ही नहीं हजारों रुपये व्यय भी करने होते थे। ऐसे पद पर वाइस-प्रेसिडेंट के रूप में मैं सर्वेसर्वा बनकर बैठ गया, यह बात समझ में आने के बाद डॉ. मंजूर और राज़ा दोनों के मन में खलबली मच गयी। उन दोनों में मेल हो गया और दो-तीन महीनों के बाद ही उन्होंने मुझ पर अविश्वास का प्रस्ताव भेज दिया। नियमानुसार उस प्रस्ताव पर विचार करने की तिथि भी निश्चित कर दी गयी। समिति के 7 सदस्यों में राजा, डॉ. मंजूर और सिविल सर्जन डॉ. स्वामी, जो बीसों वर्ष से इसके सदस्य रहते आये थे और बड़े दबंग व्यक्ति थे, मेरे विरुद्ध एकजुट थे। पी. डबलू. डी. के इंजिनियर हरिशंकरबाबू बड़े सीधे और सज्जन व्यक्ति थे। वे तटस्थ थे। विधान परिषद् के सदस्य पं.

मोहनलाल महतो यद्यपि मेरे आदरणीय शुभचिंतक थे परंतु वे कभी नहीं आते थे और यद्यपि उन्हें इस अवसर पर मैंने विशेष रूप से आने को राजी कर लिया था, परंतु उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। और वे आते भी तो हम दो ही रहते जबकि विपक्ष में तीन सदस्यों ने अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर रक्खा था। इंजीनियर हरिशंकर बाबू भी डॉ. स्वामी के आग्रह के कारण अंत में मेरे विरुद्ध मत दे सकते थे। मैंने अपने लिए एक अलग आफिस और स्वतंत्र फ़ोन की व्यवस्था वाइस-प्रेसिडेंस की हैसियत से की थी और दफ्तर में दो चपरासी सदा मेरी सेवा में नियुक्त रहते थे। जनता की भीड़ तो पानी के लिए निरंतर मेरे घर पर लगी ही रहती थी। यह सब विरोधियों की दृष्टि में खटकता था। मैंने अपनी रणयोजना निश्चित कर ली थी और इस लिए निश्चिंत था। अविश्वास प्रस्ताव में बीस-पच्चीस दिन की देर थी। इसी बीच मैं अपने बड़े लड़के आनंद का मुंडन कराने राजस्थान की यात्रा पर चला गया। वहाँ अपने जन्मस्थान नवलगढ़ में उतरकर आगे मोटर से पहाड़ों पर शाकम्भरी देवी के स्थान पर जाना होता था। मुंडन कराकर लौटते समय मेरी ननिहाल के नगर नवलगढ़ में मेरी बड़ी लड़की प्रतिभा और आनंद दोनों पर बोदरी अर्थात् छोटी चेचक का प्रकोप हो गया। मेरे दोनों मामा उस समय जीवित थे और वहीं थे। 102 डिग्री बुखार में दोनों बच्चों को लेकर नवलगढ़ से गया की दो-तीन दिन की लंबी रेलयात्रा नहीं की जा सकती थी। उधर मुझ पर लाये गये अविश्वास प्रस्ताव की तिथि भी आ गयी थी और मुझे उस निश्चित दिन पर वहाँ उपस्थित होना ही था नहीं तो मेरी रण-योजना निष्फल हो जाती और सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती। अंत में पत्नी और दोनों रुग्ण बालक-बालिका को नवलगढ़ में छोड़कर मैं गया के लिए अकेला ही रवाना हो गया। मीटिंग का समय सुबह 9 बजे का था। सारे नगर में सनसनी छायी हुई थी और पहली रात तक मेरे गया नहीं पहुँचने से यह निश्चित-सा था कि अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मुझे हटा दिया जायगा। नगर में यह बात फैल गयी थी कि मैं तीन सदस्यों के विरुद्ध अकेला था और यद्यपि राधामोहन प्रसाद चेयरमैन मेरे अपने थे परंतु प्रेसिडेंट के पद से दोनों ओर बराबर मत होने पर ही वे कास्टिंग वोट अर्थात निर्णायक मत देकर मेरी रक्षा कर सकते थे। यों भी, यदि वे पहले भी सदस्य की हैसियत से मेरे पक्ष में वोट देते तो भी हम लोग दो ही रहते। मीटिंग के 4-5 घंटे पूर्व भोर में 4 बजे मैं बंबई मेल से गया पहुँच गया और आते ही राधामोहनजी को फोन से सारी रण-योजना समझा दी। 9 बजे मीटिंग प्रारंभ होते ही अविश्वास

प्रस्ताव राजा द्वारा प्रस्तुत किया गया। राजा को दल में मैं अपना दाहिना हाथ मानता था। नगरपालिका में मुझे लोग जवाहरलाल की संज्ञा देते थे परंतु मैं कहता था कि मेरी असली ताकत तो सरदार पटेल के रूप में राजा ही है। परंतु राजा इस समय डॉ. मजूर के हाथ में बिका हुआ था। मैंने उससे एक शब्द भी नहीं कहा और अविश्वास प्रस्ताव रख दिये जाने के बाद, उठकर बोला, 'मि. प्रेसिडेंट, मैं प्वायंट ओफ ओर्डर पर एक आपत्ति करना चाहता हूँ। पहले उस पर आप निर्णय दे दें तभी आगे प्रस्ताव पर विचार हो सकता है। मेरी समझ में प्रस्तुत प्रस्ताव अनियमित और अवैधानिक है, इसलिए कोई अगला कदम उठाने के पूर्व उसकी नियमितता तथा वैधानिकता पर विचार होना आवश्यक है। मेरी आपत्ति है कि ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी की नियमावलि के अनुसार, पास किये हुए प्रस्ताव के विपरीत आशय का कोई प्रस्ताव छः महीने के अंदर नहीं रखा जा सकता। चूंकि मेरा चुनाव हुए अभी दो महीने हुए हैं अतः छः महीने के बाद ही मेरे प्रति अविश्वास का कोई प्रस्ताव लाया जा सकता है। इस लिए यह प्रस्ताव अवैधानिक है।' राधामोहन ने मेरी लिखित आपत्ति हाथ में लेते हुए कहा, 'यह अविश्वास का प्रस्ताव अनियमित है,' यह कहकर उन्होंने अपना पहले से तैयार, लिखित आदेश अंकित करा दिया। आदेश लिखा कर उन्होंने कहा, 'अन्य कोई कार्यक्रम न रहने से बैठक समाप्त घोषित की जाती है।' विरोधी तीनों सदस्य हक्के-बक्के रह गये। उन्हें इस प्रकार से प्रस्ताव के रद्द किये जाने की तनिक भी आशंका नहीं थी। डॉ. स्वामी ने मुझसे कहा, 'गुलाब बाबू, आप तो इतनी बड़ी नगरपालिका चला रहे हैं। आप क्यों इस छोटे से पद से चिपके रहना चाहते हैं। आप इस्तीफा दे दीजिए ताकि डॉ. मंजूर साहब चुन लिए जायँ। पहले भी आप उन्हींको चाहते थे।' मैंने कहा, 'मैं इस्तीफा भी दे दूँ तो नगर में यही समझा जायगा कि मैं हटा दिया गया हूँ। मैं आप सज्जनों से पूछता हूँ कि बिना मुझसे पूछे आप लोगों ने मुझे चुन लिया और अब आपस में मेल हो गया तो मुझे हटा देना चाहते है। क्या मैंने किसीसे कहा था कि आप इस पद पर मुझे चुन लें? क्या मेरी कोई प्रतिष्ठा नहीं है कि आप लड़ें तो मुझे चुन लें और मेल कर लें तो मुझे हटा दें? मुझे इस पद से कोई मोह नहीं है। मुझे नगरपालिका के कार्यों से ही अवकाश नहीं मिल पाता है। यदि आप लोग 2-4 महीने शांति से भाईचारा करके गुजारें तो मैं स्वयं हटकर आपके लिए स्थान बना दूँगा। उस समय नगर में मुझे अपदस्थ करने का प्रश्न नहीं रहेगा और यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बन जायगा। हाँ, एक बात और है, आप

प्रेसिडेंट के निर्णय को सिविल कोर्ट में चुनौती दे सकते हैं जिसका निर्णय होने में, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कम से कम 4-5 साल लग जायँगे और मैं अपना कार्यकाल निश्चिंत होकर पूरा कर सकूँगा।' इन शब्दों के साथ मैं कुर्सी से उठ गया और राधामोहन के साथ बाहर निकल गया। विरोधी पक्ष के तीनों सदस्य भी अपना-सा मुँह लेकर सभाकक्ष के बाहर निकल गये। बाहर खड़ी भीड़ ने यही समझा कि अविश्वास प्रस्ताव फेल हा गया है और मेरी जयजयकार के नारे लगने लगे।

बढ़ा हुआ टैक्स हटाना

नगरपालिका में मुझे तीन बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा जिनका समाधान एक के बाद एक मैं अपनी इच्छानुसार कर सका। सच कहूँ तो मैं अपने नगरपालिका के कार्यकाल के वही तीन कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। पहली समस्या जो मेरे सामने आयी वह सारे नगर में मकानों के कर-वृद्धि की थी। नगरपालिका में हर पाँच वर्ष पर मकान के किराये पर लगाये जाने की क्षमता का पुनर्निर्धारण किया जाता है और उसीके अनुसार भवनकर, जलकर और शौचालय-कर में वृद्धि होती है। गया में ये तीनों मिलकर मकान के किराये पर लगाये जाने की क्षमता के 33½ प्रतिशत होते थे अर्थात् यदि आपके मकान की वार्षिक आय किराये लगाने पर 100 रुपयों की हो सकती है तो आपको प्रतिवर्ष 33 रुपयें पचास पैसे कर के रूप में दे देने होंगे। नगरपालिका को इससे कोई प्रयोजन नहीं रहता है कि यथार्थ में आप किराये के रूप में अपने मकान को लगाते है या स्वयं उसमें रहते हैं या वह आंशिक रूप से खाली है। उसकी किराये पर लगने की जितनी क्षमता है, उसका 33 ½ % आपको कर के रूप में देना ही होगा। गया नगरपालिका हमारे चुनाव के पूर्व 5-6 वर्षों से सरकार के नियंत्रण में थी और एक सरकारी अधिकारी प्रशासक के रूप में उसका शासन चलाते थे। उन्होंने चुनाव के पूर्व पाँच वर्षों की अवधि पर किये जानेवाले कर का पुनर्निधारण करवा दिया था। इस कार्य पर स्थापित सरकारी अधिकारी ने नगर के मकानों के किराये पर उठाने की क्षमता चौगनी-पँचगुनी कर दी थी। अर्थात् प्रत्येक मकान मालिक को कर के रूप में पहले से चौगुनी-पँचगुनी राशि देनी होती। यह सत्य था कि बहुत-से मकान नगरपालिका में दिखाई हुई किराये की क्षमता से बहुत अधिक ऊँचे किराये पर उठे हुए थे परंतु 33½ प्रतिशत कर की दर भी अत्यंत ऊँची और अन्यायपूर्ण थी। अधिकांश मकान पुराने थे जिनकी मरम्मत आदि का व्यय तथा किराये की आय

की अनिश्चितता पर विचार करके देखा जाता तो उतनी ऊँची दर से कर देना लोगों की सामर्थ्य के बाहर था। फिर, जो लोग अपने निजी घरों में रहते थे, वे अधिकांश मध्यमवर्ग के लोग थे और अपने ही घरों में रहते हुए, किराये की काल्पनिक या संभावित आय के भरोसे उनका नगरपालिका का कर एकाएक तिगुना, चौगुना कर दिया जाना, उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय था। सरकारी अधिकारी द्वारा बढ़ाये गये टैक्स पर पुनर्विचार करने को नियमानुसार गया नगर के 10 वार्डों में से प्रत्येक वार्ड के लिए पाँच-पाँच व्यक्तियों की अलग-अलग असेसमेंट कमेटियाँ बना दी गयीं जिनमें प्रत्येक में दो नगरपालिका के निर्वाचित सदस्य, दो जनता के प्रतिनिधि और एक सरकारी अधिकारी रहते थे। इन कमेटियों में भ्रष्टाचार की बहुत संभावना थी। अतः मैने नगरपालिका की बैठक में एक प्रस्ताव पास करा दिया कि जो मकान पूर्ण या आंशिक रूप से किराये पर हों उनके कर में प्रति रुपये पर एक आने की बढ़ोतरी की जाय और जो किराये पर नहीं हों, उनका मूल्यांकन पूर्ववत् ही छोड़ दिया जाय। इस का परिणाम यह हुआ कि असेसमेंट-समितियों का कार्य केवल औपचारिक हो गया और उनमें भ्रष्टाचार की संभावना समाप्त हो गयी। इसके साथ ही उनमें सदस्यों की रुचि भी नहीं रही और उसके लिए जो सदस्य चुने गये थे उनका रौबदाब भी जाता रहा। नगरपालिका को तो इससे क्षति उठानी पड़ी परंतु जनता ने राहत की साँस ली, और इससे नगर में मेरी लोकप्रियता ही नहीं बढ़ गयी, मुझे यह भी संतोष हुआ कि नगरपालिका में पदार्पण करते ही मैंने जनता से किया हुआ अपना एक वादा पूरा कर दिया था।

गोवध बंद करना

दूसरा काम था गो-वध-बंदी का। नगरपालिका प्रति वर्ष गायों और बैलों के मांस के लिए डाक बुलवाकर वध-स्थान का ठेका किसी व्यक्ति को दिया करती थी। नगरपालिका के तदर्थ बने वधस्थल की सुविधा तथा नगरपालिका की गाड़ी में गोमांस-वितरण की सुविधा सब से ऊँची डाक बोलनेवाले को दी जाती थी। पता नहीं, यह व्यवस्था कब से नगरपालिका में चली आ रही थी। लगता है, यह अंग्रेजी शासन की उपज थी जिसके बनाये कानून के अनुसार ही स्वतंत्र होने के बाद भी नगरपालिकाओं का गठन एवं संचालन होता था। नगरपालिका में कुल 35 सदस्य थे। 36 सदस्यों में से एक सदस्य ने त्यागपत्र दे दिया था। वे भूतपूर्व सरकारी वकील और नगरपालिका के अध्यक्ष रह चुके

थे। सरकार द्वारा किये गये 6 सदस्यों के नामांकन द्वारा सदस्यता पाने के बाद उन्होंने फिर अध्यक्ष-पद के लिए हाथ-पाँव मारने प्रारंभ किये परंतु जब एक भी समर्थक नहीं मिला तो मात्र सदस्य के रूप में बने रहने में अपनी मानहानि समझकर उन्होंने सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। वे तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति देशरत्न राजेंद्रबाबू के समधी भी थे। सरकार द्वारा नामांकन, चुनाव के 6 महीने बाद हुआ था। इस अवधि में सभी चुने हुए सदस्य तीन भागों में विभक्त हो चुके थे जिसमें अब किसी अन्य को नेता बनाये जाने की गुंजाइश नहीं थी। फलतः, उन्होंने त्यागपत्र देना ही अपने लिए सम्मानजनक समझा था। इस प्रकार बचे हुए कुल 35 सदस्यों में 12 मेरी मूल युवक पार्टी के, 12 रायहरिप्रसाद की हिंदू महासभाई विचारधारावाले तथा 6 मुस्लिम या मुस्लिम-समर्थित दल के सदस्य थे। 5 नामांकित सदस्यों के लिए छीना-झपटी मची रहती थी। इनमें दो हरिजन, दो महिलायें तथा एक मुसलमान थे। हमारी चेयरमैनी में 12 मेरे अपने मूल सदस्य, जिनको लेकर मैंने युवक पार्टी बनाई थी, 6 मुस्लिम समर्थित वायसचेयरमैन आदि तथा कुछ अन्य नामांकित सदस्यों के बल पर बहुमत रहता था। रायहरिप्रसाद की 12 व्यक्तियों की जमात विरोधी पक्ष का काम करती थी। इस परिस्थिति में गोवध समाप्त करने की कोई योजना हाथ में लेने में 6 मुस्लिम सदस्यों का समर्थन खोकर अल्पमत में पड़ जाने की संभावना थी क्योंकि 5 नामांकित सदस्यों का कोई भरोसा नहीं था। परंतु गोवध रोकने के प्रयत्न में रायहरिप्रसाद की पार्टी के सदस्य हमारे साथ आ सकते थे। हम लोगों ने यह खतरा उठाना तय किया। परंतु एक और बड़ी कठिनाई सामने आयी। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ, नगरपालिका का कानून अंग्रेजों के समय का बना हुआ होने के कारण उसमें एक प्रावधान यह भी था कि नगरपालिका के किसी भी प्रस्ताव को सरकार निरस्त कर दे सकती थी। कानून में कमिश्नर को यह अधिकार दिया हुआ था। अंत में हमारे दल के एक सदस्य श्री रामकिशोर प्रसाद ने रास्ता सुझाया। वे जाति से कायस्थ थे और स्थानीय राजेंद्र विद्यालय में, जिसमें मैंने शिक्षा ग्रहण की थी, शिक्षक थे। उनकी बुद्धि कानूनी बातों में छुरी की धार के समान तेज थी। नगरपालिका के कानून में एक प्रावधान यह भी था कि चेयरमैन प्रतिवर्ष नगरपालिका में उन पशुओं की सूची विज्ञापित करेंगे जिनका वध किया जा सकता है तथा नगरपालिका-क्षेत्र में जिनका मांस बेचा जा सकता है। हमने तय किया कि उसमें से गोवंश का नाम हटा देंगे अर्थात् गाय, बैल और बछड़े का वध और मांस-विक्रय नगरपालिका की सीमा

में होने की आज्ञा नहीं रहेगी। चूंकि यह चेयरमैन का आदेश होगा अतः इस में सरकार किसी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी। किसी प्रस्ताव को निरस्त करने के अतिरिक्त नगरपालिका पर सरकार का अन्य किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं हो सकता था। हाँ, वह नगरपालिका का अधिग्रहण कर के अपना कोई अधिकारी बैठा सकती थी। पर वह अंतिम कदम था और उसके लिए लोकतांत्रिक सरकार को बहुत कुछ सोचना पड़ सकता था। कांग्रेस की सरकार, जो मुसलमानों के हितों को प्राथमिकता देती थी, गोवध रोकने के प्रस्ताव को तो क्षण भर में निरस्त कर देती परंतु इस बात पर नगरपालिका को भंग करने का साहस नहीं कर सकती थी। किसी भी अवस्था में, हमने यह संकटमय कदम उठाया और नये वर्ष की चेयरमैन की सूचना में गोवंश के वध का उल्लेख नहीं किया। यही नहीं, गोवध करने के नगरपालिका के वध-स्थान को तुड़वा कर हमने वहाँ कूड़ाघर बनवा दिया तथा नगरपालिका का जो ट्रक गोमांस का वितरण करता था उसे कूड़ा ढोने की गाड़ी के रूप में परिवर्तित कर दिया। नगर में खलबली मच गयी। हमारी पार्टी के वाइसचेयरमैन तथा उनकी जमात के 5-7 सदस्यों ने हमारा साथ छोड़ दिया परंतु उनके बदले में हमें राय हरिप्रसाद की जमात के 10-11 सदस्य मिल गये। नगर के मुसलमान वकीलों ने कलक्टर के पास आवेदन देकर उस कार्य की वैधानिकता को चुनौती दी तथा उनसे यह प्रार्थना की कि इस आदेश को सरकार द्वारा रद्द करा दें। हिन्दू वकीलों ने हमारा साथ दिया। खूब गर्मागर्म बहस हुई। कलक्टर अब्राहम साहब ईसाई थे इसलिए हिंदू या मुसलमान, कोई भी उनपर पक्षपात का आरोप नहीं लगा सकते थे। उन्होंने निर्णय दिया, 'चूंकि वह चेयरमैन का आदेश है अतः उसमें सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती।' हमारी विजय हो गयी और इस प्रकार गया जैसे तीर्थ-स्थान से गोवध का कलंक सदा के लिए समाप्त हो गया। नगर में नगरपालिका के वधस्थान में प्रतिदिन 5-7 गायें कटती थीं। उनकी प्राणरक्षा का श्रेय हमारे समय के बोर्ड को दिया जा सकता है।

परंतु गोवध रोकने की बात यहीं समाप्त नहीं होती। इसका एक और विस्तृत अध्याय भी है। राजस्थान के श्रीरामचंद्र शर्मा 'वीर' मंदिरों में होनेवाली पशुबलि के विरोध में समय-समय पर अनशन करते थे और कई स्थानों पर उन्हें इस कृत्य को रुकवाने में सफलता भी मिली थी तथा उन्हें इस विषय में अखिल भारतीय ख्याति मिल चुकी थी। मैं अपनी किशोरावस्था से उनके संबंध में सुनता आता था। उन्होंने बिहार में गोवध के विरुद्ध अनशन प्रारंभ कर

दिया। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करके हजारीबाग़ नगर के अस्पताल में रख दिया जहाँ अनशन करते उन्हें 64-65 दिन हो चुके थे। समाचार पत्रों में उनकी स्थिति प्रकाशित होती रहती थी और एक दिन तो यह समाचार आया कि उनका निधन हो गया है परंतु दूसरे दिन ही इसका खंडन प्रकाशित हो गया। किसी भी अवस्था में, उनकी स्थिति अच्छी नहीं थी और वे मरणासन्न थे। हमारे नगर के सुप्रसिद्ध धार्मिक सेठ मल्लीबाबू डालमियाजी के हृदय में चिंता हुई। उन्होंने मुझे उनके अनशन को तुड़वाने में सहयोग करने का अनुरोध किया क्योंकि गया नगर में गोवध रुकवाने के काम से मेरी इस विषय में बहुत ख्याति हो गयी थी। फलतः, मैं और मल्लीबाबू कार से इस कार्य के लिए हजारीबाग़ रवाना हुए। हम दोनों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध संत मौनी बाबा भी, जो उस समय गया आये हुए थे, हमारे साथ हो गये। हजारीबाग़ में रामचंद्र शर्मा से मैंने कहा कि मैं अपने नगर में गोवध बंद करवा चुका हूँ। सरकार पर तो मेरा नियंत्रण नहीं है परंतु मैं बिहार की अधिकांश नगरपालिकाओं में गोवध बंद करवा सकता हूँ क्योंकि प्रायः सभी स्थानों में हिंदू चेयरमैन हैं और सरकारी हस्तक्षेप से बचने की कुंजी मेरे हाथ लग चुकी है। बिहार में 52 नगरपालिकाएं थी जिनमें भागलपुर-नगरपालिका के बाद गया-नगरपालिका ही सब से बड़ी थी, इसलिए मैं अन्य नगरपालिकाओं का नेतृत्व कर सकता था। रामचंद्र शर्मा 'वीर' ने कहा कि 52 में से 26 नगरपालिकाएँ अपने यहाँ गोवध रोक देंगी तो मैं अपना अनशन समाप्त कर दूँगा। उन्होंने कांग्रेसी शासन पर अपनी खीज व्यक्त करते हुए कहा कि मुझे तो यहाँ हजारीबाग़ के अस्पताल में लाकर ग्लूकोज के बल पर सरकार जीवित रक्खे हुए है परंतु यदि आप अपने प्रयत्न में सफल हो जायँगे तो मैं उसे अपने लिए जीवन-दान समझूँगा। मैंने गया लौट कर बिहार नगरपालिका-संघ की स्थापना की और बिहार की बावनों नगरपालिकाओं के चेयरमैनों को उसका सदस्य बनाया। प्रधान मंत्री का पद मैंने सँभाला और मुंगेर नगरपालिका के चेयरमैन को अध्यक्ष मनोनीत करके गया में बिहार राज्य नगरपालिका-संघ का प्रथम अधिवेशन बुलाया। इस कार्य के लिए सारा व्यय मल्लीबाबू डालमिया ने वहन किया। नगरपालिका-संघ के अधिवेशन में गोवध को रोकने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। 36-37 नगरपालिकाओं ने, नगरपालिका के चेयरमैन के आज्ञापत्र में गोवंश के वध की मनाही तथा नगरपालिका क्षेत्र के अंदर गोमांस बेचने के निषेधवाले मेरे नुस्खे का प्रयोग करके अपने-अपने क्षेत्र में गोवध बंद करवा दिया और उसकी सूचना तार द्वारा मेरे पास भिजवा दी क्योंकि

यह प्रश्न रामचंद्र शर्मा 'वीर' की प्राणरक्षा का प्रश्न बन गया था। विलंब करने से उनका प्राणांत हो जा सकता था। वे सरकारी ग्लूकोज के सहारे किसी तरह जीवित रक्खे जा रहे थे। पुनः एक बार बिहार की 39 नगरपालिकाओं में गोवध रोक दिये जाने की सूचनावाले तारों का बंडल लेकर मैं मल्लीबाबू के साथ हजारीबाग पहुँचा। रामचंद्र शर्मा तार देखकर प्रसन्न हो गये और यह तय किया गया कि संत विनोबाभावे, जो पदयात्रा में वहाँ दूसरे दिन पहुँचनेवाले थे, के हाथ से उनका अनशन भंग कराया जाय। अनशन भंग होने पर रामचंद्र शर्मा 'वीर' ने गया में एक वृहत् सार्वजनिक सभा में अपने प्राणों की रक्षा का श्रेय मुझे देते हुए मेरी बड़ी प्रशंसा की। हजारीबाग़ में मैंने विनोबाजी से गया नगरपालिका को संबोधित करने का आश्वासन भी ले लिया था। विनोबाजी ने गया आकर नगरपालिका के सदस्यों के बीच बहुत ही सारगर्भित भाषण देते हुए बताया कि वेदों में इंद्र को पुरंदर कहा है। पुरंदर का अर्थ है पुरों को तोड़नेवाला। आप भी इस बात का ध्यान रक्खें कि नगर एक स्थान पर अत्यधिक सघन न हो जाय।

पानी के नये कनेक्सन देना

डी फैक्टो यानी वास्तविक चेयरमैन और शासन करनेवाली पार्टी के मंत्री तथा जन्मदाता के रूप में नगर में जाने जाते हुए भी मेरी वैधानिक स्थिति तो केवल एक कमिश्नर की ही थी। सरकारी पत्र-व्यवहार, विवादों की सुनवाई और उनके निर्णय आदि सभी कार्य मैं करता था परंतु उन पर हस्ताक्षर तो चेयरमैन के नाते राधामोहन का ही होता था। परंतु ज्वायंट वाटरवर्क्स कमेटी का मैं वाइसप्रेसिडेंट था इसलिए उसमें मैं वैधानिक रूप से भी सारा काम सँभालता था। वाटरवर्क्स कमेटी, 7 व्यक्तियों की छोटी-सी कमेटी थी। वाइसप्रेसिडेंट ही उसके सारे कागजों पर हस्ताक्षर करता था तथा नियमतः उसका सारा कार्यभार सँभालता था। जैसे विश्वविद्यालयों में वाइसचांसलर ही सर्वोच्च अधिकारी माना जाता है और चांसलर को कोई याद भी नहीं करता, उसी प्रकार ज्वायंट वाटरवर्क्स कमिटी में वाइसप्रेसिडेंट ही सर्वोच्च अधिकारी होता था। इसलिए नगर के जल-वितरण की सारी समस्या अकेले मुझे ही सँभालनी थी तथा मैं इसमें पूरा समय और शक्ति भी लगाता था तथा सारे कागजों पर हस्ताक्षर भी अकेले मेरा ही होता था। ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी, जैसा कि इसके नाम से प्रत्यक्ष है, नगरपालिका से स्वतंत्र कमेटी थी तथा वैधानिक रूप से इसकी 12

प्रतिशत की टैक्स की आय भी जलकर के रूप में उससे स्वतंत्र होनी चाहिए थी। परंतु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हो पाता था और नगरपालिका के 32½ प्रतिशत टैक्स की 12½ प्रतिशत जलकर की उगाही नगर-पालिका द्वारा होने के कारण इसका अधिकांश रुपया नगरपालिका के घाटे को पूरा करने में लग जाता था। केवल कागज पर यह नगरपालिका पर ऋण के रूप में दिखाया जाता था। वाटरवर्क्स कमेटी की इस प्रकार नगरपालिका के नाम बकाया के रूप में दिखायी जाती इस लाखों रुपयों की बकाया राशि में एक फूटी कौड़ी की भी वसूली की आशा नहीं थी।

वाटरवर्क्स कमेटी में मेरे काम सँभालते समय 12-13 लाख गैलन पानी प्रतिदिन नगर में वितरित होता था। यह पानी फल्गु नदी में बालू खोदकर लंबे कुंड बनाकर उसके अंतस् में प्रवाहित जलस्रोत से उपलब्ध होता था। यह व्यवस्था उस समय प्रायः 50-60 वर्ष पुरानी हो चुकी थी और इस बीच नगर की जनसंख्या चौगुनी-पँचगुनी बढ़ जाने के कारण सर्वथा अपर्याप्त थी। इसलिए घरों में नये जल के कनेक्शन और सार्वजनिक स्थानों पर नलों की व्यवस्था अत्यंत विरल रूप से होती थी और लोगों को वर्षों प्रतीक्षा और बड़ी पैरवी के बाद ही घर में जल की सुविधा उपलब्ध हो पाती थी। सार्वजनिक स्थानों पर अर्थात् सड़क के या गली के मोड पर नल का लगना तो प्रायः बंद-सा था। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, कमेटी के मुझपर अविश्वास-प्रस्ताव-संबंधी विवाद के बाद मैं प्रायः अकेला पड़ गया था। नये जल के कनेक्शन कमेटी द्वारा पास किये जाने पर ही दिये जा सकते थे परंतु वाइसप्रेसिडेंट को अधिकार था कि वह अस्थायी रूप से कनेक्शन लगवा दे। मैंने कमेटी की मीटिंग बुलाना बंद कर दिया क्योंकि उसमें राधामोहन अध्यक्ष केवल मेरे पक्ष में थे और तीन सदस्य विरोधी हो गये थे। पब्लिक हेल्थ के सरकारी इंजीनियर तटस्थ थे, अतः तीन के मुकाबले में हम दो ही रह गये थे। इसके अतिरिक्त राधामोहन अध्यक्ष के नाते वोट में या विवाद में भाग नहीं ले सकते थे अतः मुझे अकेले को ही तीन-तीन महारथियों का वार सहना पड़ सकता था। अतः सब से सुरक्षित स्थिति, इस स्थिति से बचे रहने की एक ही थी और मैं वैसा ही करता था। यद्यपि नियमावली के अनुसार प्रत्येक मास मीटिंग होनी थी पर मैं हर महीने लिखित सूचना भेज दिया करता था कि कोई विशेष कार्य न होने से इस मास में मीटिंग नहीं होगी। तीनों विरोधी सदस्य दाँत पीसकर रह जाते थे परंतु वे कर ही क्या सकते थे। उनके शस्त्र तूणीर से बाहर निकलने को छटपटाते रहते थे परंतु युद्ध का अवसर आये तभी तो वह संभव था।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी हुई पहली नगरपालिका और पहली ज्वायंट वाटरवर्क्स कमेटी से जनता बड़ी अपेक्षा रखती थी। मैं जनता का इस प्रकार चुना हुआ पहला प्रतिनिधि था और उसके प्रेमपूर्ण सहयोग से ही चुना गया था अतः मुझे तो पहले की तरह हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठना था। अब न तो लोगों को एक-एक जल-कनेक्शन के लिए बरसों प्रतीक्षा करने का धीरज था, न मुझे। जो भी आर्त व्यक्ति पानी कनेक्शन के लिए मेरे पास आता, मैं अस्थायी कनेक्शन का आदेश देकर उसके यहाँ नल लगवा देता। स्थायी और अस्थायी कनेक्शन में किसी प्रकार का अंतर नहीं था क्योंकि पानी की सप्लाई तो वैसी ही होनी थी और जब तक स्थायी न हो जाय, अविरत चलती रहती थी। कनेक्शन पानेवाले को तो पानी से प्रयोजन था, स्थायी हो या अस्थायी। चूंकि मेरे व्यक्तिगत आदेश के कारण उसके घर में नल लग जाती थी अतः मैं तो उसके लिए भगवान के सदृश था। इसी प्रकार दूर-दूर गलियों में, जहाँ अधिकांश गरीब लोगों की बस्तियाँ होती थी, मैं सार्वजनिक नलें भी उसी अस्थायी प्रणाली से लगाने लगा। मेरा तर्क था कि नगर में, किसी भी अवस्था में, पानी तो सभी को उपलब्ध होता ही है। अधिक नल लग जाने से पानी का दबाव कम हो जायगा और वह मकानों में ऊपर के तल्लों पर नहीं पहुँच सकेगा, नलों के अधिक कनेक्शन देने से यही कठिनाई तो होनेवाली है। मैंने कहा कि मैं ऊँचे मकानवालों की चिंता नहीं करता। वे निजी मोटरपंप लगाकर नीचे के तल्ले से पानी को ऊपर के तल्लों में ले जा सकते हैं। परंतु प्रत्येक घर में नीचे तल्ले पर पानी उपलब्ध हो जाने से मध्यम श्रेणी के परिवारों की स्त्रियाँ तो पानी पा सकेंगी जिन्हें सार्वजनिक नलों से दूर-दूर से पानी लाने के लिए अपने मर्दों का मुँह जोहना होता है।

तीन-चार महीनों में, मीटिंग द्वारा स्थायी कनेक्शन दिये जाने की सुविधा न पाने पर भी इस अस्थायी नल-वितरण-व्यवस्था के आधार पर मैंने प्रायः 3-4 सौ घरों में नये नल लगवा दिये। जो भी आवेदन-पत्र आता, मैं औचित्य देखकर तुरत उस पर अस्थायी नल लगाने क़ा आदेश पारित कर देता। इस प्रकार आवेदन देते ही तीन चार दिन में घर के अंदर नल लग जाने से नगर में मेरे नाम की धूम मच गयी। इसी प्रकार सार्वजनिक स्थानों पर नल दे-देने से गरीबों के बीच मैं मसीहा बन गया। एक सतर्कता मैं अवश्य बरतता था। जिस आवेदन पर कोई वाटरवर्क्स कमेटी का सदस्य अनुशंसा कर देता, उसे मैं तुरंत निरस्त कर देता था और आवेदक से कह देता था कि अनुशंसक के कारण उसका

आवेदन निरस्त कर दिया गया है क्योंकि ये सदस्य मेरे काम में रोड़े अटकाते हैं। इस प्रकार एक तो नल-वितरण में मेरी कीर्ति का उद्घोष, दूसरे, अपनी असमर्थता तथा अवमानना से तीन-चार महीनों में विरोधी सदस्यों की अक्ल ठिकाने आ गयी और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। उनमें एक तो मेरे नगरपालिका के प्रारंभिक मित्र और नगरपालिका के प्रारंभिक चुनाव के दिनों में मेरे दाहिने हाथ 'राजा' थे और दूसरे थे डॉ. मंजूर जो प्रारंभ में उपाध्यक्ष पद के प्रत्याशी थे और अत्यंत साधु स्वभाव के थे। दोनों अत्यंत सम्मान्य नागरिक थे। उनसे ऊपर वर्णित घटना के बाद मेरा कभी कोई विरोध नहीं हुआ और इसके बाद तीन-चार वर्षों की अवधि में मुझे वाटर-वर्क्स कमेटी में किसी प्रकार की अड़चन का सामना नहीं करना पड़ा।

मेरी आदर्शवादिता

परंतु इस प्रकरण की समाप्ति के पूर्व एक-दो घटनाओं का वर्णन आवश्यक है। पहली घटना इस प्रकार है—हमारे जिले के प्रमुख कांग्रेसी नेता, जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष जगेश्वर प्रसाद 'खलिशजी' एक दिन मेरी दुकान पर आकर बोले कि नगर में बड़ी चर्चा हो रही है कि वाटरवर्क्स में घूस ले-लेकर पानी के कनेक्शन दिये जा रहे हैं। सब लोग यही कहते हैं कि गुलाबजी ही सर्वेसर्वा हैं और जो भी उन्हें प्रसन्न कर देता है, तुरत नल-पा जाता है। सुनते ही मेरा मुँह क्रोध से लाल हो गया। सैकड़ों की संख्या के जितने नये अस्थायी नल-कनेक्शन मेरे आदेश से उस समय तक दिये गये थे, उसकी मेरे पास टंकित सूची थी। मैंने वह सूची खलिशजी के हाथ में दे दी और दो कागजों पर नगरपालिका तथा वाटरवर्क्स बोर्ड से अपने त्यागपत्र लिख दिये। उन त्यागपत्रों में मैंने यह भी उल्लेख कर दिया कि इन त्यागपत्रों को पाने के समय से प्रभावी माना जाय। नल के नये कनेक्शनों की सूची और अपने त्यागपत्र खलिशजी के हाथ में देते हुए मैंने कहा कि तीन-चार सौ नये नल पानेवालों में से यदि एक व्यक्ति भी कह दे कि मैंने गुलाबजी को इस कार्य के लिए किसी प्रकार की भी घूस दी है तो आप बिना मुझसे कुछ भी पूछे मेरा त्यागपत्र नगरपालिका और वाटर वर्क्स बोर्ड में दे दें। मेरा स्वतंत्र बोर्ड कांग्रेस-सरकार और स्थानीय कांग्रेसी नेताओं की आँखों में काँटे की तरह खटकता था। नगर की जनता भी मेरी भक्त हो गयी थी। ऐसी स्थिति में इस प्रकार का अधिकार अपने विरोधी के हाथ में सौंप देना परम मूर्खता ही कही जा सकती थी। राजनीति में तो अपने

विरोधी को नष्ट करने के लिए ही इस प्रकार की उचित-अनुचित चालें सदा ही चली जाती हैं। मैं आज अपने इस आवेशमय कार्य को बुद्धिमानी नहीं कह सकता। परंतु भावना तो भावना ही है। मैं कवि के नाते बुद्धि से अधिक भावना का ही दास था। क्रोध और आवेश में मनुष्य क्या नहीं कर बैठता है! मुझे इस बात से मार्मिक चोट पहुँची थी कि जिसे मैं सेवा समझकर शुद्ध भाव से कर रहा था, उसे घूस का नाम देकर कलंकित किया जा रहा है। मेरे इस अकल्पित कदम से खलिशजी पानी-पानी हो गये। वे सूची और त्यागपत्र मुझे लौटाने की चेष्टा करते हुए बोले, 'मैं ऐसा नहीं कहता। नगर में आपको ही नगरपालिका और ज्वायंट वाटरवर्क्स कमिटी का सर्वेसर्वा माना जाता है। सुबह-शाम आपकी दुकान पर चेयरमैन समेत कमिश्नरों की मंडली जुटी रहती है। आपकी कार के बगल में नगरपालिका की मोटर लगी रहती है। नगरपालिका के भवन में आपकी अलग आफिस और वाटरवर्क्स के टेलीफोन का आपके घर पर होना, यह सब लोगों की दृष्टि में खटकता है। अतः इस प्रकार लोग अपने मन का गुबार निकालते हैं। मैंने खलिशजी से कहा, 'अब आपको यह लिस्ट और ये त्यागपत्र ले जाने ही होंगे और या तो आप जाँच कर के मुझे निर्दोष घोषित कर देंगे या मेरे त्यागपत्र दोनों स्थानों पर दे देंगे। इस लिस्ट की दूसरी प्रति मैं वाटरवर्क्स से मँगा लूँगा, आप इसे अपने पास रखकर सुविधा से यह जाँच करें, परंतु जाँच अवश्य करें। यह मेरे आत्मसम्मान का प्रश्न है। खलिशजी उन कागजों को लेकर हतप्रभ होकर चले गये। इसके बाद विरोधियों के मुँह तो बंद हो ही गये, मेरे दोनों त्यागपत्र भी संभवतः उनके द्वारा फाड़कर फेंक दिये गये क्योंकि फिर कभी मैंने उनकी कोई चर्चा नहीं सुनी। यह गाँधीजी के सिद्धांतों की विजय थी।

नगरपालिका के प्रारंभिक दिनों में ही मुझे अपनी आदर्शवादिता को सार्वजनिक जीवन की कसौटी पर कसने का एक और अवसर आ गया। मेरे चुनाव के समय छोटूसिंह नामक एक व्यक्ति ने मेरी कुछ सहायता की थी। वह एक शक्तिशाली व्यक्ति माना जाता था और जिले में सर्वत्र उसका आतंक व्याप्त था। मैंने सुबह टहलने जाते समय एक पंजाबी रेस्तरांवाले को अपनी दुकान की सीमा से आगे सड़क के फुटपाथ पर चूल्हा बनाते हुए देखा और नगरपालिका में फोन करके सुपरवाइजर को उसे रोकने के लिए भेज दिया। थोड़ी देर बाद छोटूसिंह मेरे पास आया और बोला कि वह पंजाबी मेरा मित्र है, आप, जो वह कर रहा है, उसे करने दें। मेरे लिए धर्मसंकट था। एक ओर तो चुनाव में मेरी सहायता का दावा करनेवाला और मुझसे मित्रता का दम

भरनेवाला जिले का सब से शक्तिशाली व्यक्ति एक छोटे-से काम के लिए मेरे पास आया था, दूसरी ओर उचित और न्यायपूर्ण कार्य करने का मेरा सिद्धांत था। मैंने अपना त्यागपत्र लिखकर छोटूसिंह के हाथ में पकड़ा दिया। वह हक्का-बक्का रह गया। मैंने उससे कहा कि आपने मेरे चुनाव में जो सहायता की है उसका बदला मैं नगरपालिका में अनियमितता करके नहीं चुका सकता। इससे अच्छा है आप मुझे इस भार से मुक्त कर दें। छोटूसिंह को इस प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा नहीं थी। उसने कहा कि जब आप अपने सिद्धांत पर इतने दृढ़ हैं तो मैं कुछ नहीं कह सकता और मेरा इस्तीफा फाड़ते हुए उसने कहा, 'मैं उस दुकानदार को अपनी असमर्थता बता देता हूँ।' थोड़ी देर बाद छोटूसिंह फिर लौटकर आया और बोला कि दुकानदार ने कहा है कि वह स्वयं अपने सड़क पर बढ़े हुए चूल्हे को तोड़ देगा, आप नगरपालिका द्वारा न तुड़वायें, इससे उसकी बड़ी बेइज्जती होगी। मैंने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसके बाद दुबारा छोटूसिंह कभी किसी काम के लिए मेरे पास नहीं आया।

इसी प्रकार, एक बार गया के कलक्टर की पत्नी बच्चों की डिलीवरी के लिए एक धर्मार्थ मातृ-सेवासदन का गया में निर्माण करवा रही थी। वह भवन एक सड़क के उस मुहाने पर बन रहा था जिस के दोनों ओर 10-12 फुट चौड़ा फुटपाथ था। भवन के सामने के फुटपाथ को भवन में मिलाकर दीवाल खड़ी कर दी गयी थी। एक स्थान पर के फुटपाथ के समाप्त हो जाने से न केवल सड़क की सुंदरता ही नष्ट हो जाती, उसके उपयोग में भी बाधा उपस्थित हो जाती। काम धर्मादे का और लोकहित का था और जिलाधीश की पत्नी की प्रेरणा से हो रहा था इसलिए किसी व्यक्ति ने इस विषय में मुँह खोलने का साहस नहीं किया था और नगर पालिका के अधिकारी भी मौन थे। संयोग से मैं उस ओर से जा निकला और वह निर्माण देखकर आश्चर्य में पड़ गया कि एक स्थान पर पूरा फुटपाथ कैसे भवन की सीमा में घेरा जा रहा था। मैंने तुरत सुपरवाइजर को आगे का कार्य रोकने का आदेश दे दिया। उसके बाद जिलाधीश ने मुझे बुलाया और कहा कि उनकी पत्नी यह लोकहित का कार्य करवा रही थी और उसने यह नहीं सोचा था कि फुटपाथ को घेरने से कोई हानि होगी, परंतु आपकी आपत्ति उचित है। आप केवल नगरपालिका के कर्मचारियों को वहाँ से हटा दें। वह बढ़ी हुई दीवार स्वयं गिरा दी जायगी। मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी! इस प्रकार मेरी आदर्शवादिता की रक्षा भी हो गयी और सड़क भी सुरक्षित रह गयी।

मेरी राजनीतिक भूल

विष्णु भगवान क्षीरसागर में लेटे-लेटे सारे संसार का पालन करते हैं। लक्ष्मी उनके चरण दबाती है और स्मरण करते ही वाहन के रूप में गरुड़ उपस्थित हो जाता है जो क्षण मात्र में उन्हें कहीं भी पहुँचा सकता है। तीनों सर्वोच्च देवाधिपतियों में केवल उन्हें ही ये सुविधाएं प्राप्त हैं। बाकी ब्रह्माजी तो कमल-कोष में एक प्रकार से नज़रबंदी **(House arrest)** की-सी स्थिति में रहते हैं। उन्हें शयन करने की भी सुविधा नहीं है क्योंकि यदि कहीं वैसी व्यवस्था होती भी तो चार मुखों के कारण चतुरानन के लिए वह संभव नहीं था। मैंने अपनी **अहल्या** काव्यकृति में उनकी इस पीड़ा को वाणी भी दी है।

ब्रह्मांडीय हाइकमांड के तीसरे सदस्य तो और विकट परिस्थिति में जीते हैं। हिमालय के हिमशिखर पर जीरो डिगरी से भी नीचे की ठंडक में वे निर्वसन केवल हाथी के चमड़े को कमर में लपेटे बैठे रहते हैं। संभवतः, इसी कारण ठंडक से बचने को शरीर पर भस्म लगाये रहते हों पर यह कोई ईर्ष्या करने लायक स्थिति नहीं कही जा सकती। अत्यधिक संवेदनामय तथा दयालु स्वभाव के होते हुए भी उनका कार्य अत्यंत कठोर, संसार को नष्ट करते रहने का है जिसे वे अपने प्रशासक यमराज को सौंपकर सदा ध्यानमग्न रहते हैं।

मैं उपर्युक्त तीनों सर्वोच्च देवाधिपतियों की तुलनात्मक स्थिति द्वारा विष्णु भगवान की सुविधाजनक स्थिति दिखाकर उनके सिर पर निरंतर छाये हुए संकट की ओर ध्यानाकर्षण करना चाहता हूँ। सारे सुख-साधनों के होते हुए भी सहस्र फणोंवाला शेषनाग उनके मस्तक पर सदा फुँफकारता रहता है। ब्रह्माजी को केवल लेटने और सोने की सुविधा नहीं है तथा शिवजी को केवल ठंड और अच्छे निवास का अभाव है परंतु विष्णु भगवान तो सारी सुविधाओं को भोगते हुए भी शेष नाग के फणों के नीचे लेटे रहने के कारण उन दोनों से अधिक विषम स्थिति में हैं। इस विनोदमय काव्यात्मक उपमा से मेरा तात्पर्य यही है कि इसी प्रकार नगरपालिका का प्रशासन हाथ में आने पर और हजारों सेवकों और अनुग्रह पाने को लालायित भक्तों की भीड़ से घिरे रहने पर भी उसमें विरोधी पक्ष शेष नाग के समान सदा सिर पर अपनी विषभरी फुफकारें छोड़ता रहता था। गोवध बंद करते ही हमारा दल मुस्लिम सदस्यों के साथ छोड़ देने के कारण अल्पमत में हो गया था परंतु एक राय हरिप्रसाद को छोड़कर उनके दल के 10-11 हिंदू सदस्यों के आ मिलने से हम पुनः बहुमत में आ गये थे, जैसा

उलटफेर राजनीति में अक्सर देखा जाता है। मुस्लिम सदस्यों के नेता नारोबाबू स्वयं हिंदू थे परंतु प्रारंभ से ही उनकी मंडली मुस्लिम सदस्यों को लेकर ही बनी थी। वे न केवल अत्यंत महत्त्वाकांक्षी और आर्थिक दृष्टि से बहुत संपन्न ही थे, दोनों हाथ से पैसे लुटाते भी थे जिसके कारण उनके यहाँ दरबार-सा लगा रहता था। जो मंडली मैं नगरपालिका द्वारा सुविधाएँ दे-देकर तथा अपनी निरंतर भागदौड़ के बल पर जुटाये रहता था वह उन्हें अपने पैसों के बल पर प्राप्त थी। दो मनोनीत हरिजन सदस्यों को तो उन्होंने एक प्रकार से खरीद ही लिया था। एक का तो घर भी संभवतः उन्होंने बनवा दिया था। वे नगरपालिका की बैठकों में सभापति के पद पर प्रतिष्ठित थे जो मैंने चेयरमैनी के चुनाव के समय समझौते की शर्तों के अनुसार उन्हें दे दिया था। वे अत्यंत महत्त्वाकांक्षी थे और चेयरमैन बनने की लालसा को कभी उन्होंने मन से नहीं छोड़ा था। जब तक साथ थे तब तक तो चुप बैठे रहने के सिवा उनके पास और कोई चारा नहीं था परंतु विरोधी-पक्ष में जाते ही उन्होंने अपना असली रूप दिखाना प्रारंभ कर दिया। कार्यवाही की बही उनके हाथ में रहती थी और उस पर अपने दल के किसी सदस्य से ध्यानाकर्षण कराते हुए अपने ऊटपटाँग निर्णय लिख डालते थे। उन निर्णयों की कोई वैधानिक स्थिति नहीं होती थी परंतु वे सतत हमारे लिए सिरदर्द बने रहते थे। उनके कारण हमें अपने दल के सभी सदस्यों को निरंतर मिलाये रहने के लिए प्रयत्नशील रहना होता था। कोई अखिल भारतीय कांग्रेस, सोशलिस्ट पार्टी या जनसंघ जैसा दल तो हमारा था नहीं, मैंने युवकपार्टी के नाम से अपने व्यक्तिगत उद्योग द्वारा इसका सृजन किया था अतः इसे संभाले रहने का सारा उत्तरदायित्व मेरा ही था। इस प्रकार इस राजनीतिक संघर्ष में एक तो नारोबाबू थे जो सदस्यों को अपनी ओर फोड़ते रहने का प्रयास करते रहते थे, दूसरी ओर मैं था जो उन्हें जोड़े रखने में प्रयत्नशील था। उनके पास अर्थ की शक्ति थी, मेरे पास सत्ता की। वे सदस्यों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचते थे, मैं नगरपालिका की सुविधाओं के बल पर उन्हें अपने साथ रखने की चेष्टा करता था। राय हरिप्रसाद से इस संबंध में मुझे कोई डर नहीं था क्योंकि वे खूँटे की तरह एक स्थान पर अड़े थे और जो हमसे बगावत करते, उनके लिए शरणस्थल थे। यह संघर्ष की स्थिति साल भार से ऊपर चलती रही। एक दिन मेरी पार्टी के एक सदस्य ने मुझे गया के निकट की प्रेतशिला नामक एक पहाड़ी पर एक पार्टी में आमंत्रित किया। गया नगर के चारों ओर पहाड़ियाँ ही पहाड़ियाँ हैं। एक प्रकार से यह नगर पहाड़ियों से घिरा है जिनमें

रामशिला, ब्रह्मयोनि और प्रेतशिला की पहाड़ियाँ प्रमुख हैं। यही नहीं, गया क्षेत्र की भूमि के नीचे भी पुराणों के अनुसार गयासुर नामक असुर का शरीर चट्टान का रूप धारण करके पड़ा है जिसे विष्णु भगवान ने अपने चरणों से दबा रक्खा है और उन्हीं विष्णु के चरण की पूजा यहाँ होती है। कहानी यह कही जाती है कि गयासुर इतना प्रचंड शक्तिशाली था कि उसे किसी प्रकार पराजित नहीं किया जा सकता था और देवताओं की रक्षा के लिए छलबल का आश्रय लेने के सिवा विष्णु भगवान के पास और कोई चारा नहीं था। गयासुर स्वयं भी विष्णुभक्त था अतः उससे युद्ध करना उनके लिए संभव नहीं था। अंत में विष्णु भगवान ने उससे कहा कि मुझे यज्ञ करने के लिए थोड़ी भूमि चाहिए और उस भूमि के लिए उसके शरीर का ही उपयोग किया जा सकता है। गयासुर इसके लिए सहर्ष प्रस्तुत हो गया। परंतु यज्ञ समाप्त होने पर जब वह उठने की चेष्टा करने लगा तो विष्णु भगवान ने अपने चरण से उसे दबा दिया। वे निरंतर उसे दाबे हुए हैं जिससे वह उठ न बैठे। इस रूपक के पीछे जो भौगोलिक सत्य है वह यही है कि गया-क्षेत्र में धरती के 60 फुट नीचे हर ओर पर्वत की अभेद्य शिला है जिसके कारण फल्गु नदी का जल भी नदी की मोटी बालू से छन कर नीचे तो चला जाता है परंतु उस शिला के ऊपर रह जाता हैं और अंदर ही अंदर प्रवाहित होता रहता है। इसीलिए फल्गु को अंतःसलिला भी कहा गया है। यही जल बालू को हटाकर लंबी-लंबी खाइयाँ बनाकर गया के नगरवासियों को पीने को दिया जाता था। गया में बोरिंग कराकर जब मैं जल-वितरण की नयी योजना लागू कर रहा था तब हर ओर 60 फुट के नीचे वह दुर्भेद्य शिला हमारे प्रयत्नों को विफल कर देती थी। उसी प्रयत्न में मुझे उस शिला की जानकारी हुई और मैंने अनुमान किया कि इस भौगोलिक स्थिति को ही पुराणकारों ने गयासुर राक्षस के रूपक में बाँधा होगा। अस्तु, मैं फिर अपने प्रसंग पर आता हूँ। पार्टी के प्रत्येक सदस्य की भावनाओं का आदर करना मेरा कर्तव्य था और मैं निश्छल भाव से उस पहाड़ पर होने वाली पार्टी में चला गया। सावन के महीने में यों भी गया के सूखे नंगे पहाड़ों में बड़ी चहल-पहल हो जाती है क्योंकि वर्षा के कारण झरने चालू हो जाते हैं और चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। प्रेतशिला की उस पार्टी में मैंने देखा कि नारोबाबू तो अपने सदस्यों के साथ उपस्थित थे परंतु मेरे दल का अन्य कोई सदस्य नहीं था। उन्हें आमंत्रित ही नहीं किया गया था। वहाँ एक हनुमानजी के मंदिर के आंगन में दालभात के भोजन के बाद नारोबाबू ने बड़े ही मधुर स्वर में मुझसे कहा, 'गुलाबजी, क्यों

न हम लोग पुनः एक हो जायँ। सारे हिंदू सदस्य आप के साथ मिल ही गये हैं, मैं भी साथ हो जाता हूँ। इस प्रकार एक राय हरिप्रसाद को छोड़कर हम सभी एक दल के रूप में परिवर्तित हो जायँ तो नगरपालिका का काम भी ठीक से चले और मेरा सिरदर्द भी दूर हो जाय। अनुपस्थित हरिजन सदस्यों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं उन लोगों की माँगें पूरी करते-करते तंग आ चुका हूँ और मुझे पानी की तरह पैसा बहाना पड़ता है।' मैंने निश्छल भाव से उनके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करते हुए कहा, 'मैं भी तो अपने सदस्यों को खुश रखने की चेष्टा में वह सारा समय बिता देता हूँ जो नगर को सुधारने में लगाना चाहिए था। यदि हम लोग 24 सदस्य एक साथ रह सकते हैं तो 35 सदस्य भी एक साथ रह सकते हैं।' हनुमानजी की मूर्ति को साक्षी रखकर हम लोगों ने मित्रता की गाँठ जोड़ ली और मैंने उन्हें पुनः पार्टी में सम्मिलित कर लिया। मेरी पार्टी में 12 हिंदूसभाई सदस्यों को मिलाकर कुल 35 में से 24 सदस्य थे। उनमें से केवल एक मुझे आमंत्रित करनेवाले सदस्य के अतिरिक्त कोई अन्य उपस्थित नहीं था। मुझे अपने दल के अन्य सभी सदस्यों से राय करके ही यह कदम उठाना चाहिए था। राजनीतिक दृष्टि से यह बहुत बड़ी भूल थी जिसमें तानाशाही की गंध आती थी और नगर में मेरी युवक पार्टी को लोग जो गुलाब बाबू की पार्टी कहते थे वह बात यथार्थ प्रमाणित हो जाती थी। नारोबाबू ने मेरे स्वभाव की, तुरत निर्णय लेने की और झट से विश्वास कर लेने की दुर्बलता को भाँप करके ही यह चाल चली थी। इसके पूर्व उनकी ओर से जब भी अविश्वास के प्रस्ताव के लिए नगरपालिका की विशेष बैठक बुलाने के लिए तीन सदस्यों के हस्ताक्षर से प्रस्ताव भेजे जाते थे तो मैं एक वर्ष आगे की तिथि पर मीटिंग बुला देता था जिसका अर्थ था उनके रिक्वीजीसन मीटिंग बुलाने के प्रस्ताव को निष्प्रभावी बना देना। वे एक-एक वर्ष आगे होनेवाली मीटिंगों में विरोध के लिए कोई संगठन कायम नहीं रख सकते थे। नियमावलि के अनुसार प्रस्ताव पाने के 21 दिनों के अंदर मीटिंग बुलाने के प्रावधान के अतिरिक्त कहीं यह नहीं लिखा था कि कितने दिन आगे बैठक बुलायी जाय। उसमें बैठक के लिए कम से कम 21 दिनों की अवधि देने का प्रावधान तो था, अधिक कितने दिनों का समय दिया जा सकता है, यह नहीं लिखा था। इसीका लाभ उठाकर मैं उनके हर अविश्वास प्रस्ताव को एक वर्ष से अधिक अवधि के बाद विचारार्थ प्रस्तुत करने के लिए रखकर, एक प्रकार से खटाई में डाल देता था। नारोबाबू की हर चाल बेकार हो जाती थी क्योंकि वे विरोधी सदस्यों का संगठन इतनी

लंबी अवधि तक नहीं टिकाये रह सकते थे। इसीसे बचने के लिए उन्होंने मित्रता का ढोंग रचा था और उसमें केवल मुझे बुलाकर मेरे सीधेपन का लाभ उठाते हुए यह चाल चली थी कि अविश्वास प्रस्ताव को विचारार्थ एक निकट की तिथि दिलवा सकें। मैंने पहाड़ की पार्टी से लौटकर अपने दल के सभी सदस्यों को यह शुभ सूचना दे दी थी कि मैंने नारोबाबू के दल को अपने साथ मिला लिया है। नारोबाबू की पार्टी में नगरपालिका के उपाध्यक्ष नवाब सईद अहमद कादरी भी थे जो अत्यंत सज्जन और निर्मल स्वभाव के व्यक्ति थे परंतु गोवधबंदी के प्रस्ताव के बाद उन्हें अपने अन्य मुस्लिम सदस्यों के साथ नारोबाबू के विरोधी गुट में शामिल हो जाना पड़ा था। मैंने उनके उपाध्यक्ष के दफ्तर में एक दूसरे विभाग का दफ्तर खोल दिया था और इस प्रकार यदि वे चाहते भी तो उन्हें नगरपालिका में बैठने का स्थान भी उपलब्ध नहीं हो सकता था यद्यपि लज्जा के मारे, विरोधी गुट में शामिल होने के बाद उन्होंने नगरपालिका के भवन में कभी पाँव भी नहीं रक्खा था। विरोधी गुट को मिला लेने के बाद मेरे घर पर नगरपालिका के सभी सदस्यों की बैठक युवक पार्टी के नाम से हुई क्योंकि तीन चार सदस्यों के साथ राय हरिप्रसाद को छोड़कर उनके शेष 7-8 मुस्लिम सदस्य, जो गोवध-बंदी के प्रस्ताव पर मेरी पार्टी से निकल गये थे पुनः, मेरी युवक पार्टी में आ गये थे। बैठक में अनुपस्थित उन तीन सदस्यों के नाम से एक अविश्वास प्रस्ताव भी आया हुआ था जिस पर बैठक बुलानी थी। प्रत्यक्ष रूप से उन सदस्यों ने नारोबाबू के गुट से अपने को स्वतंत्र घोषित करके वह प्रस्ताव भेजा था यद्यपि वह नारोबाबू की ही चाल थी जिसे मैं समझ नहीं पाया था। नारोबाबू ने बैठक में बड़े मीठे शब्दों में कहा कि गुलाबजी इस रिक्वीजीशन प्रस्ताव पर जल्दी मीटिंग बुलाकर यह उछलकूद समाप्त ही कर देनी चाहिए क्योंकि अब तो हम सभी एक साथ हैं। ये तीन सदस्य राय हरिप्रसाद से मिलकर भी क्या कर लेंगे। मैं उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया और मैंने एक महीने बाद मीटिंग बुलाने का निर्णय ले लिया और तदनुसार नगरपालिका के अध्यक्ष की ओर से मीटिंग की तिथि की घोषणा कर दी गयी। मीटिंग की घोषणा होते ही नारोबाबू ने प्रच्छन्न रूप से अपनी उछल-कूद चालू कर दी। मेरे एक मित्र ने रात के 11 बजे मुझे आकर बताया कि नारोबाबू सिनेमा में अपने एक मित्र से कह रहे थे कि इस बार मैंने मारवाड़ी को कब्जे में ले लिया है। मैं भी समझ गया कि भूल हो गयी और मुझे दगा दिया जानेवाला है। परंतु 'यदि मैं पहले कोई भी कदम उठाता हूँ तो नारोबाबू को

उलटने का बहाना मिल जायगा, यह सोचकर मैं बैठा रहा क्योंकि मेरा सिद्धांत था—धोखा देने से धोखा खाना कहीं अच्छा है। मैंने सोचा कि मुझे जानकारी हो भी गयी है परंतु मुझे नारोबाबू के विरोधी बन जाने की प्रत्यक्ष कारवाई होने के बाद ही कोई कदम उठाना चाहिए। मेरे इस निर्णय को मेरे मित्रों ने भी स्वीकार किया। मीटिंग के 3 दिन पहले नारोबाबू ने प्रत्यक्ष युद्ध की घोषणा कर दी। मेरे सदस्यों को अपनी ओर मिलाने की उनकी गतिविधि का पता समय-समय पर मुझे मिलता जाता था परंतु जब तक वे कोई प्रत्यक्ष कदम नहीं उठाते, मैंने चुप रहना ही ठीक समझा। नारोबाबू का एक ही नारा था, 'गुलाबजी इस्तीफा दे दें तो हम सभी एक होकर चेयरमैन राधामोहन का साथ दे सकते हैं। गुलाबजी डिक्टेटर की तरह काम करते हैं। मुझे और मेरे साथियों को बिना किसीसे सलाह मशविरा किये मिला लेने का निर्णय ले लेना क्या गुलाबजी की डिक्टेटरी नहीं थी!' नारोबाबू के स्पष्ट रूप से युद्ध की घोषणा कर देने के बाद मुझे भी खुले रूप से अपनी रणनीति निर्धारित करने की छूट मिल गयी। सबसे पहले मैंने नारोबाबू से मिलने का निश्चय किया ताकि विरोधी होने की बात स्पष्ट रूप से उन्हींके मुँह से सुन लूँ। मेरे मित्रों को मेरा नारोबाबू के घर पर अकेले जाना संकटपूर्ण लगता था। परंतु मैं किसीको साथ ले जाने के पक्ष में नहीं था। अंत में मेरे दो सहयोगी मकान के नीचे खड़े रहे और मैं अकेला नारोबाबू के पास पहुँचा। मैंने उनसे कहा, 'नगरपालिका में सभी 34-35 सदस्य यदि मुझपर तानाशाही का आरोप लगायें और मुझे इस्तीफा देने को कहें तो मैं इसका औचित्य समझ सकता हूँ क्योंकि मैंने बिना उनसे पूछे आपको अपना लिया था, परंतु आपने तो अपनी परेशानी बताते हुए विनयपूर्वक अपने को मेरी पार्टी में सम्मिलित कर लिये जाने की प्रार्थना की थी। आपका मुझ पर तानाशाही का आरोप लगाते हुए मेरे इस्तीफे की माँग करना तो सर्वथा अनीतिपूर्ण है।' नारोबाबू ने कहा, 'गुलाबजी, यह राजनीति है। दो-तीन वर्ष से आपसे लड़ते-लड़ते मैं परेशान हो गया था और आप अविश्वास प्रस्ताव भी विचारार्थ नहीं आने देते थे इसलिए मुझे यह चाल चलनी पड़ी।' मैं नारोबाबू के मुँह से यही वाक्य सुनना चाहता था क्योंकि इसके बाद मैं, जो भी अपने बचाव के लिए करता, उससे मुझ पर विश्वासघात का आरोप नहीं लगाया जा सकता था। मैंने नारोबाबू से यही कहा, 'हनुमानजी के मंदिर में दाल-भात के भोजन में साथ बैठकर एक होने की प्रतिज्ञा करना और फिर धोखे की चाल चलना, राजनीति नहीं, विश्वासघात है। आपने विश्वासघात किया है और मैं हारूँ या जीतूँ, अब मुझ पर,

कम-से-कम विश्वासघात का आरोप नहीं लगाया जा सकेगा।' यह कहकर मैं वापस लौट आया और अपने प्रारंभिक सदस्यों को बुलाकर भावी रणनीति पर विचार करने लगा।

परंतु उस के लिए एक अलग ही परिच्छेद चाहिए। वह वर्णन किसी जासूसी उपन्यास से कम रोचक नहीं है।

अविश्वास का संकट

मैंने पहले कह दिया है कि जब मैंने युवक-पार्टी का निर्माण किया तो मेरे दल में 12 सदस्य थे। नगरपालिका के निर्वाचित एवं मनोनीत कुल सदस्यों की संख्या 35 थी। जो 23 सदस्य शेष बचे थे वे दो गुटों में विभाजित थे। एक राय हरिप्रसाद का हिंदूसभाई गुट और दूसरा नारोबाबू का मुस्लिम-प्रधान गुट जिसमें मनोनीत सदस्यों को छोड़कर नगरपालिका के उपाध्यक्ष और अन्य सभी सदस्य मुस्लिम थे। मैंने नारोबाबू के गुट को मिलाकर ही बहुमत प्राप्त किया था और इसकी कीमत मुझे उपाध्यक्ष एवं नगर पालिका की बैठकों में सभापतित्व करने का सभापति का पद उनके गुट को देना पडा था। मेरे गोवध-वंदी के कार्य से नारोबाबू के गुट ने मेरा साथ छोड़ दिया था परंतु इसके फलस्वरूप मुझे रायहरिप्रसाद को छोड़कर उनके दल के शेष 11 सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो गया था जिसके कारण मेरे दल का बहुमत ज्यों-का-त्यों रह गया था। पूर्व प्रकरण में वर्णित नारोबाबू के गुट को बिना किसी से सलाह-मशविरा किये अपने दल में सम्मिलित कर लेने के मेरे कार्य से हिंदूसभाई सदस्य पुनः मुझसे रुष्ट हो गये। नारोबाबू के इस प्रचार से कि मैंने बिना किसी की राय लिये केवल अपने मन से उन्हें साथ कर लिया था, मेरे अधिनायकवादी आचरण का यथेष्ट कारण माना गया। नगरपालिका के विधान के अनुसार यदि अध्यक्ष पर अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाय तो नगरपालिका भंग कर दी जाती है। अध्यक्ष को दो-तिहाई मतों से ही हटाया जा सकता था और तभी दूसरा व्यक्ति अध्यक्ष का पद पा सकता था। नगरपालिका का कोई भी सदस्य नगरपालिका का भंग किया जाना नहीं चाहता था। जो अध्यक्ष-पद के लालची थे, वे भी अवश्विास-प्रस्ताव पारित कराकर कुछ लाभ नहीं उठा सकते थे, अतः विरोधी-पक्ष को हमारे विरोध में 24 सदस्यों का समर्थन पाना आवश्यक था जिससे वे कार्यरत अध्यक्ष को हटाकर अपने को उस पर चुनवा सकें। चुने जाने के लिए तो केवल बहुमत यथेष्ट था पर एक बार चुन लिये जाने पर अध्यक्ष-पद

से हटाये जाने के लिए विरोधी पक्ष के लिए दो-तिहाई मत जुटाना अनिवार्य था और यही हमारी सब से प्रबल शक्ति थी। मेरे प्रारंभिक सदस्यों में यदि बारहों बने रहते तो दोनों विरोधी गुटों में से, जो अब मिल गये थे, केवल एक को अपनी ओर मिलाकर मैं नारोबाबू की सारी योजना धूल में मिला सकता था। मेरी रणनीति भी यही थी क्योंकि दोनों विरोधी गुटों के मिल जाने से बहुमत तो स्पष्टतः हमारे विरुद्ध हो ही गया था। मेरी युवक-पार्टी में राजा नामक जो प्रारंभिक सदस्य था और जो मेरा दाहिना हाथ माना जाता था वह कई कारणों से नारोबाबू से जा मिला था और चेयरमैन को हटाने के प्रस्ताव को विचारार्थ उपस्थित कराने की यह चाल भी उसीकी सुझाई हुई थी, ऐसा कहा जा रहा था। वह मेरे स्वभाव की, तुरत विश्वास कर लेने की दुर्बलता से, भली भाँति परिचित था। मैंने नारोबाबू से अपनी पूर्ववर्णित भेंट के बाद, दूसरे दिन सबेरे उठते ही पहला काम यह किया कि रिक्शे पर बैठकर अकेला तीन मील दूर राजा के घर जा पहुँचा। वह नींद से उठकर मुझसे मिलने आया तो मैंने अपना त्यागपत्र लिखकर उसके हाथ में दे दिया और कहा, मेरी हार हो या जीत परंतु अपने प्रारंभिक युवकदल के विघटन को और अपने दाहिने हाथ, प्रिय बंधु को अपने विरुद्ध जाते मैं नहीं देख सकता। राजा की आँखों में आँसू भर आये और उसने मेरा त्यागपत्र का कागज फाड़कर फेंक दिया। वह मेरे अधिनायकवादी रुख से अप्रसन्न अवश्य था परंतु मेरे प्रति उसका प्रेम यथावत् था। उसने यह तो नहीं कहा कि वह नारोबाबू का साथ छोड़ देगा परंतु मुझे और सब प्रकार से आश्वासन दिया। उसके घर से लौटने के बाद मैंने अन्य सदस्यों की टोह लेनी आरंभ की। मेरे पास, राजा की स्थिति अनिश्चित रहने के कारण, निश्चित रूप से केवल 11 सदस्य थे। नगरपालिका के विधान के अनुसार अध्यक्ष को हटाने के लिए केवल दो तिहाई मतों की ही आवश्यकता ही नहीं थी, दो तिहाई सदस्यों का बैठक में उपस्थित होना भी अनिवार्य था। अतः हम यदि दो विरोधी सदस्यों को बैठक से अनुपस्थित करा सकते तो भी हमारी विजय हो जाती क्योंकि अविश्वास प्रस्ताव को बहुमत से पास करना तो कोई भी सदस्य नहीं चाहता था। हमने यही नीति अपनाई कि किसी प्रकार ऐसी युक्ति निकालें कि विरोधी सदस्यों में से कम से कम दो सदस्य उस दिन मीटिंग में नहीं पहुँच सकें। यही एक मात्र सही और संभव युक्ति जान पड़ती थी क्योंकि कोई सदस्य हमें साथ देने का वचन देकर भी बैठक में विरुद्ध मत दे सकता था। यदि नहीं भी देता तो नारोबाबू के हाथ में सभापतित्व होने के नाते सभा की कारवाई

लिखने की स्वतंत्रता थी और वे उसका नाम अपने पक्ष में लिखकर अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव दो तिहाई मत से पारित घोषित कर सकते थे। अपने को उसके बाद अध्यक्ष चुनवाना तो आसान था क्योंकि उसके लिए केवल बहुमत आवश्यक था जो उनके पास निश्चित रूप से था।

राजा ने यद्यपि मुझे मित्रता का आश्वासन दिया था परंतु आर्थिक और अन्य कारणों से वह नारोबाबू के पक्ष में वोट देने को विवश था, इसलिए हम उसे विरुद्ध ही गिनते थे।

मेरे दल में मेरे प्रधान सहायक अब श्री रामकिशोर प्रसाद शिक्षक थे। जिनकी बुद्धि चाकू की धार की तरह तेज थी। बाहर से उस समय के नगर कांग्रेस के अध्यक्ष महेश्वरी सिंह भी व्यक्तिगत रूप से मेरी सहायता को आ गये थे। वे अर्थमंत्री अनुग्रहबाबू के दल के थे जिनका मुझ पर वरद हस्त समझा जाता था। हम लोगों ने, दो मनोनीत हरिजन सदस्य, एक मनोनीत महिला सदस्य जो महिला चिकित्सालय की बड़ी डाक्टर थी तथा पटना में रहनेवाले एक हमारे विरोधी मनोनीत मुस्लिम सदस्य को उस दिन की बैठक में अनुपस्थित करा देने की योजना बनायी। राय हरिप्रसाद के गुट के सभी सदस्यों से भी मैंने व्यक्तिगत रूप से मिलना प्रारंभ किया। उनमें एक सदस्य थे सुदामा भगत। वे शरीर से इतने स्थूलकाय थे कि नगरपालिका में उनके बैठने के लिए विशेष रूप से चौड़ी कुर्सी बनवायी गयी थी क्योंकि अन्य कुर्सियों में उनकी काया समा नहीं सकती थी। मैंने नगरपालिका की जीप या अपनी निजी कार का उपयोग सदस्यों से मिलने के कार्य में करना छोड़ दिया था। मैं पैदल ही सुदामा भगत के घर पर जा पहुँचा। मुझे पैदल आते देखकर उन्होंने जोरों से रामायण की चौपाई पढ़ी --

रावण रथी, विरथ रघुवीरा

देखि विभीषण भयउ अधीरा

हमारे विरोध में नारोबाबू की मोटर दौड़ रही थी और मैं पैदल या रिक्शे पर दूर-दूर सदस्यों से मिलने जा रहा था। यह बात सुदामा भगत के कलेजे में चुभ गयी। वे बोले, मैं हृदय से आपके साथ हूँ परंतु मेरे गुट के सभी सदस्य नारोबाबू का साथ दे रहे हैं अतः नहीं चाहकर भी मुझे उनके साथ अध्यक्ष को हटाने के पक्ष में हाथ उठाना पड़ेगा। मेरा मन बहुत दुर्बल है और मैं अपने साथियों से प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर सकता। मुझे आप किसी तरह गायब कर

दीजिए। लौटकर उनकी बात पर विचार करके हम लोगों में से श्रीनंदकिशोर प्रसाद ने यह जिम्मा लिया और नगरपालिका की बैठक के पहले दिन वे अपनी मोटर में बिठाकर उन्हें गया नगर से 30 मील दूर नवादा शहर में ले गये ताकि वे मीटिंग के समय गया में अनुपस्थित रहें। इस प्रकार एक सदस्य तो हमारे कब्जे में आ गया। हमें एक लाभ यह भी था कि अपने सदस्यों में से किसीके भी अनुपस्थित रहने से हमारी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़नेवाला था। एक सुदामा भगत के नहीं रहने से विरोधी पक्ष की संख्या चौबीस से तेईस हो जाती थी, परंतु हमें इससे संतोष नहीं था। सभापति नारोबाबू विरोधी पक्ष के नेता थे और सभा की कारवाई लिखना उन्हींका काम था। वे एक सदस्य की अनुपस्थिति को उपस्थिति में लिखकर प्रस्ताव के पारित होने की घोषणा कर सकते थे। हमें तो ऐसा करना था कि 35 सदस्यों की कुल संख्या के आधे से अधिक सदस्य उपस्थित न हो सकें। अब हमने दो हरिजन सदस्यों को भी अपना लक्ष्य बनाया जो हमारे विरोध में बिक चुके थे। मैं पहले बता चुका हूँ कि नगर-कांग्रेस के अध्यक्ष महेश्वरी सिंह हमारे साथ थे। उन्होंने एक फर्जी पत्र तैयार किया जिसमें लिखा था कि सरकार की ओर से प्रदेश-कांग्रेस गया से पचास मील दूर के एक गाँव के हरिजनों को आर्थिक सहायता देना चाहती थी अतः नगरपालिका के उक्त दोनों हरिजन सदस्यों से इसकी जाँच करा कर रिपोर्ट अविलंब भेजें। इसके लिए नगर कांग्रेस किसी मोटर का प्रबंध करके उन सदस्यों को वहाँ भेजकर इसकी जाँच कराये। हमारे गुट के एक सदस्य कालीचरण, जो कांग्रेस के पुराने कार्यकता थे, इस पत्र को लिये हुए जीप पर सवार होकर उन सदस्यों के पास पहुँचे और वह पत्र देते हुए कहा कि यह पत्र कांग्रेस दफ्तर से आया है। आप लोगों को आज ही जाँच करके रिपोर्ट भेज देनी है ताकि उस गाँव के हरिजन-परिवारों को सरकारी सहायता मिल सके। इस जाँच के कार्य में मैं भी आप लोगों के साथ चलूँगा। इसी कार्य के लिए यह जीप गाड़ी हमारे लिए भेजी गयी है। उन सदस्यों ने कहा कि कल सुबह नौ बजे नगरपालिका की बैठक है, भला हम नगर से बाहर कैसे जा सकते हैं। कालीचरण ने कहा - 'भाई, मैं भी तो नगरपालिका का सदस्य हूँ। मुझे भी तो मीटिंग में उपस्थित रहना है। हम लोग आज संध्या तक लौट आयेंगे।' वे दोनों हरिजन सदस्य यह नहीं जानते थे कि हमारे पक्ष के कालीचरण की उपस्थिति हमारे लिए आवश्यक नहीं थी। उनमें से एक धोबी था और एक मेहतर। कानूनी सूक्ष्मताएं वे नहीं जानते थे। उन्हें नारोबाबू ने खरीद रक्खा था। उन्होंने समझा कि मीटिंग में तो कालीचरण

का रहना भी आवश्यक है, संध्या समय लौट ही आना है, जाँच के लिए जाने में कोई हर्ज नहीं है। इस कार्य से अपनी महत्ता का भी उनके मन में अभिमान जागा होगा। जो भी हो, वे इसके लिए तैयार हो गये। जीप के ड्राइवर के रूप में हमारे दल के एक सदस्य ने अपने भतीजे को बैठा रक्खा था जिसने अपने को पहिचाने जाने से बचाने के लिए आधा मुँह रुमाल से यह कह कर छिपा रक्खा था कि उसके दाँतों में सुबह से पीड़ा हो रही है। जीप उन दोनों हरिजन सदस्यों को लेकर गया से तीस मील दूर एक गाँव में ले गयी जहाँ थोड़ी देर विश्राम करने के बहाने वे लोग रुक गये। उसके आगे की कथा बाद में हमारे सदस्य कालीचरण ने, जो उनके साथ गये थे, यों बतायी --

जब वे उस गाँव में रुके तो मैंने उन दोनों सदस्यों को खूब अच्छा भोजन कराया तथा ताड़ी पिलायी जिससे वे पूरे दिन गहरी नींद में सो गये। संध्या समय उनकी नींद खुली तो मैंने कहा कि इसी गाँव के दूसरे हिस्से में चलकर जाँच करनी है परंतु वह रात में नहीं हो सकती। सुबह उठते ही हम लोग जाँच पूरी करके गया लौट चलेंगे ताकि सुबह 9 बजे मीटिंग प्रारंभ होने के पूर्व वहाँ पहुँच सकें। दोनों हरिजन सदस्यों के सोने की और रात के भोजन की भी भव्य व्यवस्था थी। दोनों खा-पीकर सो गये। सुबह 6 बजे ही जगकर उन लोगों ने हल्ला मचाना शुरु किया कि अब तुरत जाँच पर चलना चाहिए क्योंकि गया समय पर लौटना ही है। मुझे हीलाहवाला करते देखकर एक हरिजन सदस्य के मन में संदेह हो गया। वह बोला 'मैं शंका-निवृत्त होकर आता हूँ' और लोटा लेकर दूर सड़क की ओर चला गया। वहाँ उसे गया जाती हुई एक बस दिखाई दी और वह भाग कर उस पर सवार हो गया तथा उड़न-छू हो गया। उसे देर तक लौटता नहीं देखकर दूसरे धोबी सदस्य का भी माथा ठनका। इधर दिन भी चढ़ रहा था। वह गया लौटने को छटपटाने लगा परंतु ड्राइवर ने जीप के खराब हो जाने का ढोंग रचा और वह उसे सुधारने में लग गया। धोबीराम छटपटाने लगे और मैं बारबार उससे कहता गया कि भाई मुझे भी तो मीटिंग में उपस्थित होना है, घबराओ मत, मोटर ठीक होते ही हम तीर की तरह गया लौट चलेंगे। अब यह जाँच दूसरे दिन कर लेंगे। वह अकेला व्यक्ति क्या कर सकता था। उसने मन में कुछ भी समझा हो, चुप होकर बैठे रहने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं था। सुबह के 7 बज चुके थे और सड़क भी वहाँ से दूर थी। जाते ही सड़क पर कोई वाहन मिल जाय, इसका भी भरोसा नहीं था। फिर उसे सड़क पर अब जाने भी कौन देता! वह चुपचाप मन मारकर जीप के ठीक होने की

प्रतीक्षा में बैठ गया। इस बीच उसके लिए पुनः खाने-पीने का सामान आ गया और मीटिंग की चिंता भुलाकर वह कलिया-कवाब पर हाथ साफ करने में जुट गया। मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी। अकेले करता भी क्या! वह जान गया कि दो व्यक्तियों से वह पार नहीं पा सकता था। मीटिंग में उपस्थित न हो सकने का उसके पास यथेष्ट कारण भी था इस लिए खूब अच्छी तरह खा पीकर मोटर के ठीक होने की प्रतीक्षा में वह गहरी नींद में सो गया और करीब 10 बजे दिन में जागा। मैं उससे बनावटी सहानुभूति दिखाते हुए बोला, 'इस मोटर मे आज हम दोनों को मीटिंग में भाग लेने से वंचित कर दिया। भविष्य में ऐसी जाँच में मैं तो नही आऊँगा।' धोबीराम बेचारा सुनते रहने के सिवा कर ही क्या सकता था! मीटिंग का समय बीत चुका था और हम लोग गया नगर से 20-25 मील दूर एक गाँव में पड़े थे। इस प्रकार एक सदस्य और हमारे चंगुल में आ गया। यद्यपि हमने दो सदस्यों पर चारा फेंका था परंतु एक हरिजन सदस्य जो शंका-निवारण के बहाने गया की ओर जाती हुई बस से लौट आया था, ठीक मीटिंग के समय पर पहुँच गया और हमारे विरोध में वोट देने में सफल हो गया। परंतु यह तो मीटिंग प्रारंभ होने के समय की बात है। अभी तो मैं उसके पूर्व की योजना ही बताना चाहता हूँ।

दोनों हरिजन सदस्यों को विदा करने के बाद एक अन्य मनोनीत सदस्य, लेडी डाक्टर सुंदरम् को नगरपालिका की उस मीटिंग से अनुपस्थित करने की योजना बन गयी। इस कार्य को संपादित करने के लिए मैं अपने आदरणीय मित्र मल्लीबाबू डालमिया के पास गया जिनके सहयोग से मैंने रामचंद्र शर्मा 'वीर' के प्राणों की रक्षा की थी और बिहार की अधिकांश नगरपालिकाओं में गोवध बंद कराने में सफलता पायी थी। वे परम धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। उनके मेरे परिवारिक संबंध भी थे और गया में तथा प्रदेश में गोवध बंद कराने के मेरे कार्य से वे मेरे परम भक्त भी बन गये थे। मैंने उनसे कहा कि आप सुबह 7 बजे ही लेडी डाक्टर सुंदरम् को अपने घर की किसी महिला की आवश्यक जाँच के लिए बुला लें और दस बजे तक उसे घर में किसी बहाने से रोके रहें ताकि वह मीटिंग में नहीं पहुँच सके। उन्होंने सहर्ष यह काम करने का बीड़ा उठाया। अपनी पुत्रवधू के पेट में तीव्र दर्द होने का बहाना करके उन्होंने लेडी डाक्टर सुंदरम् को 7 बजे अपने घर पर बुला लिया। जब वह जाँच करके किसी दवा का नुस्खा लिखकर जाने लगी तो पूर्व योजनानुसार उनकी पुत्रवधू पुनः दर्द से कराहने लगी। उन्होंने डॉ. सुंदरम् से कहा, 'आपको जितनी फीस चाहिए,

मैं दूँगा परंतु आप जब तक मेरी पुत्रवधू को आराम न आये, यहाँ से मत जाइए।' सुंदरम् बोली, 'मुझे 9 बजे नगरपालिका की मीटिंग में सम्मिलित होना है।' मल्लीबाबू ने कहा, 'क्या नगरपालिका की मीटिंग में सम्मिलित होना एक रोगी की प्राणरक्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।' वह थोड़ी देर और बैठी रही और जब आधे घंटे के बाद उठने का प्रयत्न करने लगीं तो पुनः वही नाटक दुहराया गया। सुंदरम् को कुछ संदेह हो गया क्योंकि तथाकथित रोगी के पेट में उसे किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं दिखाई देती थी। वह हँसकर बोली 'क्या आप यह चाहते हैं कि मैं मीटिंग में न जाऊँ।' मल्लीबाबू भी हँसते हुए बोले 'हाँ, मैं यही चाहता हूँ। गुलाब बाबू ने गोरक्षा-बंदी का अत्यंत पवित्र कार्य किया है। उनका अहित नहीं होना चाहिए। सुंदरम् ने कहा, 'मैं तो गुलाब बाबू की पूर्ण समर्थक हूँ और किसी भी अवस्था में अध्यक्ष को हटाने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं उन्हींके पक्ष में वोट दूँगी।' मल्लीबाबू ने कहा, 'उन्हें इस मीटिंग में अपने पक्ष में वोट नहीं गिनवाना है। विरोधी पक्ष को ही केवल अपने पक्ष में चौबीस-सदस्यों की संख्या गिनवानी हैं। सभापति नारोबाबू, जो विरोधी गुट के नेता हैं, आपके नहीं चाहने पर भी आपका नाम अपने पक्ष में लिख देंगे। गुलाब बाबू का समर्थन, नहीं जाने से ही, पूरा हो जाता है। लेडी डाक्टर राजी होकर आराम से बैठ गयी और चायपान तथा गपशप में उसने दस बजे तक वहीं ठहरने का निश्चय कर लिया।

लेडी डाक्टर को रोकने की योजना के बाद पटना से आनेवाले एक मनोनीत मुस्लिम सदस्य कयूम खिजर को पटना में ही रोकने की हमने योजना बनायी। पटना से सुबह 5 बजे चलकर एक ट्रेन गया 8 बजे तक पहुँचती थी जिससे पटना में रहनेवाले उस सदस्य को हमारे विरुद्ध मतदान के लिए आना था। हमने एक व्यक्ति को मीटिंग के पहले दिन अपनी योजना समझाकर पटना भेज दिया। वह व्यक्ति 4 बजे भोर में ही एक रिक्शे पर सवार हो कर उस सदस्य के घर के पास रुक गया। रिक्शेवाले को पूरे पैसे देकर मिला लिया गया था। ज्यों ही वह सदस्य फिट-फाट होकर स्टेशन जाने को घर से निकला, वह रिक्शेवाला उसके सामने से गुजरा और बोला, 'बाबू, स्टेशन चलेंगे क्या!' बाबू को तो स्टेशन जाना ही था। लपककर पहले से बैठी हुई सवारी के बगल में जा बैठे। स्टेशन उनके घर से प्राय दो मील दूर था। हमारे भेदिये ने अपनी घड़ी आधा घंटा सुस्त कर रक्खी थी। रिक्शेवाला जानबूझकर रिक्शा धीरे चलाने लगा और बारबार रिक्शे की चेन उतरने का नाटक रच कर उसे ठीक करने में समय

बिताने लगा। जब कयूम खिजर उसे जल्दी करने को कहते तो हमारा आदमी अपनी घड़ी दिखाकर कहता, 'अजी, घबराते क्यों है! अभी तो बहुत समय है। मेरा एक मुकदमा गया में आज खुलनेवाला है। मेरा पहुँचना बहुत आवश्यक है।' कयूम खिजर ने कहा 'मुझे नगरपालिका की आवश्यक मीटिंग में भाग लेना है, गाड़ी छूट गयी तो अनर्थ हो जायगा।' इस पर वह व्यक्ति बोला, 'नगरपालिका की मीटिंग तो हर महीने होती है। आपके एक व्यक्ति के जाने न जाने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, परंतु मेरा तो भारी नुक्सान हो जायगा।' यह कहते हुए वह बनावटी क्रोध दिखाते हुए रिक्शेवाले पर बिगड़ा कि यदि गाड़ी छूट गयी तो तेरी खैर नहीं है। गनीमत है अभी एक घंटे का समय है नहीं तो हम दूसरा रिक्शा कर लेते। घड़ी तो पहले से सुस्त की हुई थी। कयूम-खिजर उनकी घड़ी देखकर आश्वस्त हो गये। एक स्थान पर चाय की दुकान देखकर रिक्शेवाला बोला 'मालिक, रात भर से हारा-थका हूँ, यदि हुक्म हो तो दौड़कर एक कप चाय पी आऊँ।' हमारे आदमी ने कहा, 'जा, जा, जल्दी से चाय पीकर आ और हम दोनों के लिए भी दो सिकोरों में गर्म चाय लेता आ।' यह कह कर उन्होंने रिक्शेवाले को दो रुपयों का नोट थमा दिया। जाते-जाते ताकीद कर दी कि देर न करे। रिक्शेवाले को तो समय गँवाना ही था। इस कृत्य में और पंद्रह मिनट बरबाद हो गये और इस प्रकार गया की ट्रेन छूटने के समय पाँच बजे तक कयूम खिजर साहब हमारे आदमी के साथ स्टेशन से एक मील दूर रिक्शे पर झख मारते रहे। स्टेशन पहुँचने पर वहाँ की घड़ी में उन्होंने देखा तो 6 बज चुके थे और गया की ट्रेन आधा घंटे पूर्व निकल चुकी थी। इस प्रकार विरोधी पक्ष के एक और सदस्य को हमने पटना में रोककर अध्यक्ष को हटाने के पक्ष में वोट देने को उपस्थित होने से रोक दिया था।

एक अन्य सदस्य श्री कुँवर प्रसाद सिंहल मेरे परम मित्र थे। नगरपालिका में सदा उनका कोई न कोई काम लगा ही रहता था जिसमें मैं उनका सदा सहायक रहता था। वे सुदामा भगत की तरह, मन से मेरे पक्ष में होते हुए भी, मित्रों के दबाव से विवश थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं पूजा पर बैठ जाऊँगा और जब मीटिंग समाप्त हो जाने का आपका फोन मिलेगा तो दिखावे के लिए नारोबाबू के पक्ष में मतदान के लिए पहुँच जाऊँगा। उनके द्वार पर विरोधी पक्ष के सहायक सुबह से धरना देकर बैठे रहे परंतु वे ऊपर की मंजिल से नीचे नहीं उतरे। जब-जब मीटिंग में ले जाने को जल्दी दिखायी जाती, उनके भाई कह देते, 'पंडितजी, पूजा करा रहे हैं। बीच में भला कैसे छोड़कर आ सकते हैं। क्या

मुनिसिपैलिटी के लिए कोई अपना धर्मकर्म छोड़ देगा!' एक व्यक्ति जिसको उन्हें मीटिंग में लाने का भार सौपा गया था, हताश होकर बोला, 'क्या जीवन भर का धर्मकर्म आज के दिन ही पूरा करना था।' यहाँ भी हमारी चाल सफल हो गर्या। कुँवर बाबू तभी मकान से नीचे उतरे जब मैंने उन्हें फोन करवा दिया कि मीटिंग समाप्त हो चुकी है। आप आ सकते है।

इस प्रकार सुदामा भगत, दो हरिजन सदस्य, लेडी डाक्टर सुंदरम्, पटना से आनेवाला सदस्य कयूम खिजर तथा कुँवर प्रसाद सिंहल समेत 6 सदस्यों को नगरपालिका की मीटिंग से अनुपस्थित करने की हमारी योजना सफल रही और 6 में से केवल एक हरिजन सदस्य ही हमारे जाल से निकलकर मीटिंग में उपस्थित होने में सफल रहा। मैंने ऊपर जितना वर्णन किया है वह बाद की जानकारी के आधार पर है। सदस्यों को अनुपस्थित करने की योजना में हमें यह पता नहीं था कि वह कितने अंशों में सफल होगी या सफल भी होगी या नहीं। मैंने सभाभवन में टँगी घड़ी का टाइम आधा घंटा आगे करवा दिया था तथा एक नये रजिस्टर पर मीटिंग की कारवाई पूरी लिखवाकर तैयार कर ली थी। उस रजिस्टर में अपने में से एक व्यक्ति को सभापति की अनुपस्थिति में सभापति बना दिया गया था। अपने दल के ग्यारह सदस्यों का उपस्थिति में हस्ताक्षर कराकर अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से विफल दिखा दिया गया था। हमारी योजना थी कि वे छहों सदस्य जिन्हें हम अनुपस्थित करने की योजना बना चुके थे, यदि योजना विफल करके मीटिंग में पहुँच भी जायँ तो हम मीटिंग की समाप्ति की घोषणा करके हॉल में ताला लगवा देंगे। विरोधी पक्ष को जो भी मीटिंग जहाँ भी करनी हो करे, परतु सिविल कोर्ट में दोनों मीटिंगों की वैधता पर निर्णय होने तक वह हमारे अधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। यह युक्ति 10 वर्ष पूर्व नगर पालिका के एक भूतपूर्व अध्यक्ष के कार्य द्वारा मुझे सूझी थी। वह मामला बहुत दिलचस्प है इसलिए उसे यहाँ बता देना उचित होगा।

गया नगर के मध्य में मुख्य गल्ला बाजार के बीच कठोतर टैंक नामक एक तालाब था जिसे पाट दिया गया था। वह पटी हुई कई बीघे की नगर के बीच की जमीन बड़ी कीमती थी जिसमें सैंकड़ों दुकानें बन सकती थीं। नगर के एक पूँजीपति मिलमालिक ने तत्कालीन अध्यक्ष को मिलाकर यह जमीन लेने का सौदा पक्का कर लिया। नगरपालिका की बैठक द्वारा पट्टे देने की अनुमति प्राप्त करना कानूनी रूप से आवश्यक था जो कार्य असंभव-सा था। उक्त अध्यक्ष ने

एक योजना बनायी। सूई को आधा घंटा आगे करके, मीटिंग के समय जब सदस्य-गण पहुँचे तो उन्हें बता दिया गया कि मीटिंग समाप्त हो गयी। हॉल की आधे घंटे आगे बढ़ायी हुई घड़ी के अनुसार मीटिंग आधे घंटे पूर्व प्रारंभ हो कर समाप्त हो चुकी थी जिसमें उस जमीन को बेचने का प्रस्ताव पारित किया हुआ दिखा दिया गया था। सभी सदस्य अपना-सा मुँह लेकर वापस लौट गये। लड़ाई का जमाना था। अंग्रेजों की हुकूमत थी और उक्त अध्यक्ष सरकार के अत्यंत कृपाभाजन थे अतः किसीको इस मामले में चूँचपड़ करने का साहस नहीं हुआ। इस प्रकार उस फर्जी मीटिंग द्वारा उस बहुमूल्य भूमि का स्थायी पट्टा उक्त पूँजीपति के नाम कर दिया गया। अपने शासनकाल में उस कीमती जमीन को पुनः अधिग्रहण कर लेने का नगरपालिका से प्रस्ताव पास कराकर मैंने सरकार की सहमति ले ली और उसका मूल्य भी लगवा दिया पर वह कार्य मेरे कार्यकाल में पूरा नहीं हो सका।

मैंने सब बातें विफल हो जाने पर **डूबते को तिनके का सहारा** के अनुसार उपर्युक्त योजना से काम लेने का निश्चय किया था परंतु सौभाग्य से इसकी आवश्यकता नहीं हुई। जब 9 बजे सदस्य-गण आने लगे तो सभाभवन की घड़ी में साढ़े नौ का समय देख कर वे आश्चर्य-चकित रह गये और अपनी अपनी घड़ी की ओर देखने लगे। मैंने भी उस समय तक जान लिया था कि 6 में से 5 सदस्यों को रोकने में हम सफल हो गये हैं। एक व्यक्ति को पोस्ट आफिस से सही समय का पता लगाकर आने पर और उस घड़ी का आधा घंटा आगे बढ़ी हुई जानकर मैंने नगरपालिका के हेडक्लर्क पर बनावटी क्रोध दिखाते हुए उसे घड़ी ठीक करने का आदेश दिया।

सभी सदस्यों में केवल एक पुराने खुर्राट सदस्य, अध्यक्षपद के पराजित प्रत्याशी और इस बार अध्यक्ष बनने को लालायित, राय हरिप्रसाद, जो कठोतर तालाब के स्थायी पट्टे की चाल से एक बार मात खा चुके थे, मेरी यह चाल भाँप गये। वे बोले, 'मैं अच्छी तरह जानता हूँ, गुलाब बाबू, घड़ी आधा घंटा आगे क्यों बढ़ायी गयी है।' मैं चुप रह जाने के सिवा क्या उत्तर दे सकता था!

इस प्रकार अध्यक्ष को हटाने की मीटिंग को विफल करने में हम सफल तो हो गये, फिर भी विरोधी पक्ष को बहुमत तो प्राप्त हो ही गया था। उन लोगों ने बुद्धिमानी से अध्यक्ष में अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं किया क्योंकि उसका अर्थ होता सरकार द्वारा बोर्ड को भंग कर दिया जाना, जो कोई नहीं चाहता था। केवल मीटिंग को स्थगित करके दूसरी तिथि के लिए अध्यक्ष को

हटाने के प्रस्ताव को स्थगित कर दिया गया। चूँकि नगरपालिका की बैठक छुट्टियों में नहीं हो सकती थी और दूसरे दिन से दशहरे की छुट्टियाँ होनेवाली थीं अतः दशहरे की छुट्टियों के बाद ही अगली मीटिंग की तिथि निर्धारित की गयी। इस प्रकार मुझे अपने दल को संगठित करने के लिये 15-20 दिन का समय मिल गया। माननीय अर्थमंत्री अनुग्रह बाबू का प्रारंभ से हम लोगों के प्रति अपनत्व का भाव था। अध्यक्ष के चुनाव के समय से ही मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण बाबू का मेरे विरोधी पक्ष को आशीर्वाद प्राप्त था। उसी समय अनुग्रह बाबू ने मुख्यमंत्री के पद के लिए श्रीकृष्णबाबू से टक्कर ली थी और इसमें वे पराजित हो गये थे परंतु उसी समय श्रीकृष्णबाबू के समर्थित दल की नगरपालिका के अध्यक्ष-पद में पराजय हो जाने के कारण यह समझा गया कि गया नगर में अनुग्रह बाबू का ही दल शक्तिशाली था। कांग्रेसवालों की यह मनोवृत्ति थी कि वे प्रत्येक चुनाव का समीकरण उन दिनों इन्हीं दोनों शक्ति-केंद्रों के रूप में कर लेते थे। कुछ भी हो, हमारी विजय अनुग्रह बाबू की विजय समझी गयी थी और इसलिए भी वे हम पर अपना स्नेह-भाव रखते थे। उनसे मेरे परिवार के पूर्व संबंध भी थे। अध्यक्ष को हटाने की उपर्युक्त मीटिंग के 5-7 दिन बाद वे गया आये। उन्होंने उपाध्यक्ष तथा अन्य विरोधी सदस्यों को सर्किट हाउस में बुलाकर कहा कि जिस मूर्ति को आपने प्रस्थापित किया, क्या उसको स्वयं अपदस्थ करना उचित है! उपाध्यक्ष और अनेक विरोधी सदस्यों को तो एक बहाना चाहिए था, वे हृदय से तो हमारे साथ ही थे। सभी ने मुझसे हाथ मिला लिया और इस प्रकार अगली बैठक में अध्यक्ष को हटाने की तो बात दूर रही, हमारा पुनः बहुमत हो गया और नारो बाबू की सारी योजना धूल मे मिल गयी। मेरी भूल से जो संकट पैदा हुआ था, वह टल गया।

इस के बाद करीब एक वर्ष हम चैन से अपना शासन चलाते रहे।

नगरपालिका के अन्य अनुभव

नगरपालिका का सारा प्रकरण राजनीतिक दाँव-पेच से भरा हुआ है अतः इससे पाठकों का मन ऊब गया होगा। मैंने यह आत्मकथा लिखते समय यह भी निश्चय किया था कि मेरी आत्मकथा में और कुछ न भी हो तो रोचकता की दृष्टि से ही वह पढ़ी जाय क्योंकि न तो महान राजनेताओं की जीवनी के समान इसमें अपने समय की छिपी हुई राजनीतिक घटनाओं का रहस्योद्घाटन ही मिलेगा, न सेनानायकों की आत्मकथा की भाँति इसमें युद्ध की भीतरी मोर्चेबंदी और हार-जीत के कारणों का पता चलेगा। मैं यह मानकर चलता हूँ कि यह

एक साधारण व्यक्ति की बहुमुखी जीवन-यात्रा का विवरण है, जिसकी असाधारणता भविष्य के द्वारा निर्णीत होनी है। जिनको काव्य में रुचि होगी और ज़िन्होंने संवेदना की पूंजी पायी होगी, वही मुझे विशिष्ट मानकर भविष्य में केवल मेरी जीवन-गाथा होने के कारण इसमें रुचि लेंगे। जन-साधारण तो जीवन की प्रेरणादायक कथा तथा रोचकता के कारण ही इसको अपनायेंगे और मैं इसे साहित्य के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, जन-साधारण के लिए भी, रुचिकर बनाना चाहता हूँ। आत्मकथा में रोचकता होनी ही चाहिए अन्यथा वह या तो पुस्तकालय की आलमारियों की शोभा बढ़ायेगी या दीमकों के पुस्तक-प्रेम को तुष्ट करने में सहायक होगी।

उपर्युक्त भूमिका का तात्पर्य यही है कि नगरपालिका के साढ़े तीन वर्षों के जीवन में आई दो-एक हलकी-फुलकी रूमानी तथा जासूसी एवं औपन्यासिक कहानियों जैसी रोचक सच्ची घटनाओं की झलक भी मैं दे दूँ। ऐसी ही एक घटना का वर्णन मैं अब करने जा रहा हूँ।

नगरपालिका के मेरी युवक-पार्टी के एक सदस्य के पुत्र के विवाह में हम 7-8 व्यक्ति जीप से टाटा नगर गये थे। वहाँ से लौटते समय संध्या होनेवाली थी अतः रामगढ़ नगर के बाहर की एक नदी के किनारे मोटर रोक दी गयी और ड्राइवर समेत सभी सदस्य पुल से उतरकर नदी की ओर निवृत्त होने चले गये। केवल मैं अकेला मोटर में बैठा रहा। अचानक एक रिक्शे पर दो सुंदर तरुणियाँ बगल से निकलीं जिनमें से एक से आँखें चार होने पर वह मुस्कुरा उठी। उसके मनमोहक रूप ने क्षण भर में जैसे मुझ पर जादू-सा कर दिया और मैं उसकी ओर तब तक देखता रहा जब तक रिक्शा मेरी दृष्टि से ओझल न हो गया। वह भी बीच-बीच में मुड़-मुड़कर मेरी ओर देखती गयी थी। सभी साथियों के लौटने पर मैंने उनसे यह घटना बतायी और सभी जंगल में रिक्शे पर दो सुंदर युवतियों के विषय में उत्कंठा से भर गये। हम सभी कार में बैठकर रवाना हुए और थोड़ी दूर जाने पर एक गाँव के बाहर वह रिक्शा हमें खड़ा दिखाई पड़ा। परंतु वह खाली था। रिक्शेवाले से पूछने पर उसने बताया कि वे दोनों युवतियाँ उतरकर सामने गाँव में चली गयी हैं। उनके बारे में बहुत पूछने पर उसने बताया कि वे अच्छे घरों की नहीं हैं। इतना संकेत काफी था। हम सभी उतर कर गाँव की ओर बढ़े जहाँ दस-पाँच कच्चे घरों के सिवा और कुछ नहीं था और इस प्रकार की तड़क-भड़कवाले परिधान में सजी-धजी युवतियों की वहाँ अपेक्षा नहीं थी क्योंकि कोई विशेष आयोजन भी नहीं दिखाई दिया।

हमें रिक्शेवाले की बात सही जान पड़ी। गाँव के आगे खेतों के पार हमें एक खपरैल का बड़ा भवन दिखाई दिया और हमने अपनी उत्सुकता मिटाने को उस ओर बढ़ने का निश्चय किया। 6-7 व्यक्ति साथ थे इसलिए आगे बढ़ने में कोई भय नहीं था। सड़क पर ड्राइवर के साथ हमारी मोटर खड़ी थी इसलिए पलायन की समस्या उपस्थित होने पर उसका भी समुचित साधन उपलब्ध था। भवन के बाहर एक व्यक्ति खड़ा था जिसने हमें देखकर कहा, 'आइए, भाई साहब, चले आइये'। उसके बोलने के ढंग और आत्मीयता से हमारा रहा-सहा भय भी जाता रहा। वह हमें अपने साथ उस मकान के अंदर ले गया जहाँ अत्यंत सुंदर सजावट के साथ एक बड़े हॉल में कई कुर्सियाँ लगी थीं। बाहर से अंदर की इस सजावट का अनुमान नहीं किया जा सकता था। हॉल के बाद आंगन के चारों और 8-10 कमरे थे जिनमें से निकल निकलकर सुंदर वस्त्रों में सजी 7-8 तरुणियाँ हमारे सामने आकर खड़ी हो गयीं। पल मात्र में अलिफलैला का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। उस व्यक्ति ने कहा, 'आप लोग अपने लिए उपयुक्त साथी की तलाश कर लें। केवल दस रुपयों की फीस है।' फिर क्या था! सभी भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़े। जिस तरुणी ने मेरी दृष्टि अपने रूप-जाल में खींच ली थी, उसे मुझे दिखाते हुए और उसे मेरी ओर ढकेलते हुए उसकी सहेली ने कहा, 'ले, तेरे मन का मीत आ गया न। तू इन्हीं पर तो लट्टू हो रही थी!' उसने लज्जा से सिर झुका लिया। सभी लोगों ने उसकी सहेली की बात सुनी और सब से अधिक सुंदर होने पर भी, यह कह कर कि यह तो गुलाबजी की प्रेमिका है, उसे मेरे लिए छोड़ दिया। मैं मंत्रमुग्ध-सा सब के अलग-अलग कमरों में चले जाने पर उसके साथ हो लिया। मैं उसके रूप पर और उसकी मुस्कान और सलज्ज मुद्रा पर तो मुग्ध था परंतु उसके प्रति मेरे मन में कोई वासनात्मक विचार नहीं आ पाया। मैं घंटे भर उससे केवल बातें करता रहा और जब दस रुपये पकड़ा कर वापस आने लगा तो वह रुपये लेने में आनाकानी करने लगी। पर मैंने वे रुपये जबरन उसे लेने को विवश कर दिया। वह बंगाल से कुछ दिन पूर्व ही आयी थी और बातचीत में अत्यंत सुसंस्कृत थी। अंत में सभी साथी जब अपने-अपने कमरों से बाहर आ गये तो उसने फिर मेरी ओर सलज्ज दृष्टि से देखते हुए उस व्यक्ति से जो हमे अंदर ले गया था, कहा 'ये मुझसे अलग ही बैठे रहे फिर भी ये रुपये जबरन मुझे दे रहे हैं। मैं ये रुपये कैसे ले सकती हूँ!' सब साथी मेरी मूर्खता पर हँसने लगे परंतु मैंने अपनी झेंप छिपाते हुए कहा, 'मैंने तुम्हारा घंटे भर का समय लिया। यह उसकी कीमत है।

मुझे याद रखना।' मैं इसके आगे नहीं बोल सका। हम सब जब वहाँ से चले तो सब युवतियाँ तो अंदर ही रहीं पर वह तरुणी बाहर निकलकर मुझे उस समय तक देखती रही जब तक मैं उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया। मैं भी मुड़-मुड़कर उसकी ओर देख लेता था। मेरा आकर्षण रूप की सीमा तक था। अपनी पत्नी के अतिरिक्त मैंने किसी दूसरी स्त्री से कभी संपर्क नहीं किया था। शायद यही उस स्त्री के प्रति आकर्षित होते हुए भी मेरे अलग रहने का कारण हो सकता है।

एक और घटना मेरे नगरपालिका के जीवन में घटी जिसकी याद आते ही आज भी मेरा मन कड़वाहट से भर जाता है तथा अपने को दोष देने लग जाता है।

नगरपालिका के स्कूल में शिक्षिका के पद के लिए एक युवती ने आवेदन दिया था। हमारी पार्टी के कुछ मनचले सदस्यों ने चेयरमैन को, मेरी जानकारी के बिना एक साथी के स्थान पर बुलाकर उस तरुणी को रात के 7-8 बजे यह कहकर बुलाया कि नगरपालिका के अध्यक्ष आये हुए है अतः उसकी नियुक्ति की बात हो जायगी। वह युवती वहाँ पहुँची तो इधर-उधर की बातों के बाद उसे एक शीशे के गिलास में शराब पीने को दी गयी। वह भौंचक्की रह गयी। सारी बातें भाँप कर उसने चेयरमैन साहब की ओर मुड़कर कहा, 'चेयरमैन साहब, आप तो मेरे पिता तुल्य हैं। मैं आप से ऐसी आशा नहीं करती थी।' परंतु **कामातुराणां न भयं, न लज्जा**। उसके अनुनय-विनय पर किसीने ध्यान नहीं दिया। वह किसी तरह अपनी इज्जत बचाकर वहाँ से भागी। उस युवती द्वारा चार पन्नों में लिखा गया सारी घटना का विवरण नगरपालिका की मीटिंग में सभापति नारोबाबू ने मेरे सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया क्योंकि चेयरमैन की ओर से मैं ही मीटिंग में सारे उत्तर दिया करता था और चेयरमैन के अनुचित कर्म का भी उत्तर मुझे ही देना था यद्यपि यह स्पष्ट था कि वह घटना जिस गाँव की है, मैं कभी वहाँ गया ही नहीं था और किसीने भी मुझ पर कोई आरोप इस घटना के संबंध में नहीं लगाया था। प्रत्येक मीटिंग के पूर्व प्रश्नों की लंबी फेहरिस्त आ जाती थी जिनका उत्तर देना मेरा ही काम था परंतु इस बार प्रश्न नहीं, एक स्त्री का अभियोगपत्र था जिसका मुझको उत्तर देना तथा चेयरमैन के इस आचरण का बचाव करना था। मैंने उसे पढ़ा और उसकी विवरण-शैली देखकर दंग रह गया। सच्ची घटना होने के कारण उसका वर्णन अत्यंत सजीव

था। राजनीति किस प्रकार व्यक्ति की आँखों पर पक्षपात का चश्मा लगा देती है, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण अब मैं दे रहा हूँ। हमारे विरोधी नारोबाबू द्वारा प्रस्तुत किया जाना और विरोधी दल द्वारा समर्थित होना ही मेरे लिए उस घटना की असत्यता का प्रमाण था। उस युवती ने सारी घटना पूरे कथोपकथन के साथ लिखी थी जिसके कारण उसे प्रेमचंद की कोटि की उपन्यास-लेखिका का फतवा देते हुए मैंने उसकी करुण पुकार को बहुमत से निरस्त करा दिया। मैंने उस समय उस पत्र को असत्य ही समझा था। कई वर्ष बाद मुझे इस घटना की सत्यता का पता चला और मैंने अपना सिर पकड़ लिया। जिस प्रकार नगरपालिका के मेरे द्वारा बहुत से अच्छे काम किये गये, उसी प्रकार इस अविचार का दोषी भी मैं अपने को ही मानता हूँ। बोर्ड की मीटिंग में अध्यक्ष की ओर से उत्तर-प्रत्युत्तर सब मैं ही देता था तथा मेरे द्वारा दिये गये संकेत पर ही वोटिंग होती थी अतः यदि मैंने गंभीरता से इस प्रश्न को लिया होता तो बोर्ड भले ही टूट जाता, उस युवती के साथ किये गये दुर्व्यवहार को समर्थन देने का कलंक मेरे सिर पर नहीं चढ़ता जिससे आज भी मेरा मन कड़वाहट से भर जाता है। मुझे इस संबंध में सरदार पटेल के संबंध में सुनी हुई एक घटना की याद आती है। एक बार उत्तर प्रदेश के किसी बहुत बड़े नेता और मंत्री के संबंध में एक उच्च सरकारी अफसर युवती ने यह आरोप लगाया कि एक सर्किट हाउस में अकेली टिकी हुई पाकर उक्त मंत्री ने उसके साथ दुर्व्यवहार करने की चेष्टा की है। सरदार पटेल ने उक्त मंत्री को दिल्ली बुलाया। जब वे सरदार से मिलने पहुँचे तो सरदार उनकी ओर पीठ करके लेटे रहे और लेटे-लेटे ही पूछा, 'क्या यह आरोप सही है।' उक्त मंत्री ने सफाई में क्या कहा, यह तो पता नहीं परंतु लखनऊ लौटकर उन्होंने तुरत इस्तीफा दे दिया। यही नहीं, उनका राजनीतिक जीवन भी सदा के लिए समाप्त हो गया। सरदार ने तो ऐसे आरोप के बाद उनका मुँह देखना भी उचित नहीं समझा था। मेरा उस घटना में कोई हाथ नहीं था और मैंने अपने मोहवश उस युवती के पत्र को काल्पनिक मान लिया था फिर भी अयोग्यता और अपात्रता का दोषी तो मैं हूँ ही और अनजाने में यह पाप तो मुझसे हो ही गया। चूंकि यह समझा जाता था कि नगरपालिका का असली चेयरमैन मैं ही हूँ और मेरी इच्छानुसार ही सारे निर्णय होते हैं, उस युवती की अंतरात्मा ने शाप तो मुझे ही दिया होगा। मैं इस लेख के द्वारा अपनी भूल स्वीकार करके उस देवी से क्षमा-याचना के सिवा और क्या कर सकता हूँ!

नगरपालिका का भंग किया जाना

अध्यक्ष को हटाने के प्रस्ताव के विफल हो जाने के एक वर्ष बाद असेंबली के चुनाव का समय आ गया। कांग्रेस ने अनुभव किया कि गया नगर की सीट नगरपालिका को भंग किये बिना उसके हाथ नहीं आ सकेगी अतः उसने नगरपालिका भंग करने की ठान ली और 'कारण बताओ' नोटिस भेजा। अनुचित-उचित किसी भी कार्य के लिए कारणों की कमी तो राजकोष में कभी रहती नहीं पर टैक्स की कम वसूली का एक और कारण सरकार द्वारा पैदा किया गया। मैं बिहार के मंत्रिमंडल के प्रमुख सदस्य कृष्णवल्लभ बाबू से मिला। मेरे साथ, मुझे उनसे मिलानेवाले, उनके दाहिने हाथ, मेरे घनिष्ट मित्र कामता सिंह भी थे। मंत्रिमंडल में जब यह प्रस्ताव आया तो कृष्णवल्लभ बाबू ने हमारे विभाग के मंत्री भोला पासवान से पूछा कि वे नगरपालिका को क्यों भंग करना चाहते हैं। पासवान ने कहा कि 'टैक्सवसूली ठीक से नहीं होती।' इस पर कृष्णबल्लभ बाबू ने कहा कि टैक्सवसूली के लिए एक अधिकारी अलग से क्यों न नियुक्त कर दिया जाय! इस पर सभी सदस्यों की सहमति मिल जाने से उस समय तो संकट टल गया परंतु एक महीने बाद ही पुनः नगरपालिका को पूर्णतः भंग करने का प्रस्ताव भोला पासवान ले आया। मैं कामता बाबू के साथ पुनः राँची गया जहाँ मंत्रिमंडल की ग्रीष्मकालीन बैठक होनी थी।

मैं पहले बता चुका हूँ कि बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में दो शक्तिकेंद्र थे। एक अर्थमंत्री डॉ. अनुग्रहनारायण सिंह का और दूसरा मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्णसिंह का। अनुग्रह बाबू का तो मुझ पर वरद हस्त था ही, डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के दाहिने हाथ, दूसरे मंत्री कृष्णवल्लभ बाबू का समर्थन मिलने से मैं निश्चिंत हो गया कि मंत्रिमंडल में स्वायत्त शासन-मंत्री भोला पासवान की दाल नहीं गलेगी। मेरे अभिन्न मित्र कामताबाबू कृष्णवल्लभ सहाय के बँगले पर ही ठहरे और मैंने कामता बाबू के साथ उनसे मिलकर उनकी सहायता का आश्वासन ले लिया। इसके बाद मैं अनुग्रह बाबू से अकेला मिला। उन्होंने गीता का उल्लेख करके मुझे सफलता-विफलता से अनासक्त रहने का उपदेश तो दिया परंतु यह अवश्य जोड़ दिया कि मैं तो जहाँ तक होगा तुम लोगों को समर्थन दूँगा ही परंतु मत्रिमंडल में मैं अल्पमत में हूँ और कृष्णवल्लभ बाबू ही मुख्यमंत्री की ओर से सारे तंत्र का संचालन करते हैं। यदि उन्होंने तुम्हें समर्थन देने का वचन दिया है तो विशेष चिंता की बात नहीं है। अनुग्रह बाबू की सलाह पर मैं स्वायत्त-शासनमंत्री भोला पासवान से भी मिला परंतु वह मिलना औपचारिक था और वे बिल्कुल रोष की मुद्रा में मिले। उनकी बातचीत से मैं

समझ गया कि अपना बस चलते वे गया नगरपालिका के हमारे शासन को भंग करने में कुछ भी उठा न रखेंगे।

मैं कह चुका हूँ कि नगरपालिका में प्रायः 150 प्राथमिक विद्यालय चलते थे जिनमें शिक्षकों की संख्या एक हजार से ऊपर थी। उनका प्रोविडेंट फंड हम लोगों के आने के पूर्व के तीन वर्षों में सरकारी नियंत्रण के काल में सेविंग्स बैंक में कभी जमा नहीं किया गया था। यही नहीं, आफिस के किरानियों का भी प्रोविडेंट फंड जमा नहीं किया गया था जो जमा होना चाहिए था। हम लोगों के तीन वर्षों के कार्यकाल में भी वैसी ही अनियमितता चलती रही। शिक्षकों ने जब मुझसे अपने 6 वर्षों की बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि जमा करने का आवेदन किया और न करने पर हड़ताल की धमकी दी तो मैंने उन्हें यह सुझाव दिया कि नगरपालिका की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि 6 वर्षों के बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि एक साथ जमा की जाय। मैं प्रति माह एक वर्ष की बकाया राशि जमा करता जाऊँगा। केवल उन्हींकी नहीं, अपने आफिस के सैकड़ो किरानियों की भी, जो मूक भाव से यह अन्याय झेलते आ रहे थे, बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि इसी प्रकार जमा करता रहूँगा। शिक्षक-समुदाय के प्रतिनिधि, जो राजनीति से प्रेरित थे, अड़ गये कि सारी राशि एक साथ जमा होनी चाहिए। यह शर्त नगरपालिका की दयनीय आर्थिक स्थिति को देखते हुए, पूरी करनी असंभव थी। फलस्वरूप शिक्षकों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल ही नहीं की, उन्होंने अपनी-अपनी स्कूलों में ताला भी लगा दिया, जो सर्वथा अवैधानिक था। एक-दो दिन प्रतीक्षा करने के बाद मैंने जिलाधीश से पुलिस की सहायता लेकर सारे ताले खुलवा दिये और शिक्षकों को नोटिस भिजवा दिया कि यदि वे दो दिन की अवधि में काम पर नहीं आयेंगे तो उनके स्थान पर नये शिक्षकों की भरती प्रारंभ कर दी जायगी। शिक्षकों को तो काम पर नहीं ही आना था क्योंकि उनकी हड़ताल तो राजनीति-प्रेरित थी और उन्हें कांग्रेस का छिपा हुआ सहयोग मिल रहा था। प्रदेश में कांग्रेस सरकार थी इसलिए नगरपालिका की चेतावनी की वे क्या परवाह करते! मैंने आवेदन लेकर जब नये शिक्षकों की भरती प्रारंभ की तो हडताली शिक्षकों में खलबली मच गयी। वे अपने समर्थक स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के साथ राजधानी में विभागीय मंत्री के पास जा पहुँचे। मंत्रीजी ने सरकारी पत्र भेजकर यह आदेश भेजा कि शिक्षकों की माँगे मान ली जायँ। हमारे लिए इस आदेश का पालन करना आवश्यक नहीं था। हमने अपनी आर्थिक विवशता उन्हें लिखकर भेज दी और दो बातें उसमें और जोड़ दीं कि गया की कलक्टरी कचहरी पर हमारा 4-5 साल का टैक्स बकाया है जो मिलना

चाहिए। हमने अपने पत्र में यह बात भी लिख दी कि हड़ताली शिक्षकों की बकाया 6 वर्षों की प्रोविडेंट फंड की राशि में तीन वर्षों की बकाया राशि तो सरकारी नियंत्रण के समय की है। सरकार प्रति वर्ष सड़कों आदि की मरम्मत के काम में 60-70 हजार रुपये देती रही है परंतु हमारा बोर्ड होने के बाद से एक पैसा भी हमें नहीं मिला है और सरकार हमारे साथ प्रारंभ से विमाता का-सा व्यवहार कर रही है। सरकारी नियंत्रण के समय सरकार की दी हुई सारी सड़क-मरम्मत की राशि मेहतरों की और शिक्षकों की तनख्वाह में खर्च कर दी जाती थी। उन्होंने दफ्तर के कर्मचारियों का और शिक्षकों का एक वर्ष का भी प्रोविडेंट फंड नहीं जमा कराया। ऐसी स्थिति में हमारे सीमित साधनों से हम जितना कर सकते थे, हम कर रहे हैं। सरकार ने नगरपालिका का उत्तर मिलते ही जिलाधीश को सरकारी दफ्तरों का नगरपालिका का बकाया टैक्स अविलंब चुका देने का आदेश भेजा। उस संबंध में नीचे लिखी घटना का उल्लेख मनोरंजक होगा।

सरकार के बकाया टैक्स का जिलाधीश का चेक गोप नामक एक डिपटी मजिस्ट्रेट लेकर आया। उस चेक को नगरपालिका के बड़े बाबू ने जमा करके उसे रसीद थमा दी। रसीद लेने के बाद उसने कहा कि जिलाधीश का आदेश है कि चेक की पूरी रकम शिक्षकों के बकाया प्रोविडेंट फंड में जमा कर दी जाय। हेडक्लर्क उस मजिस्ट्रेट को लेकर मेरे पास आया जिसने जिलाधीश का मौखिक आदेश मुझे सुनाया। मैंने कहा कि चेक की यह राशि अब नगरपालिका की राशि है और इसका किस प्रकार उपयोग किया जाय यह हमारी इच्छा और सुविधा पर निर्भर करता है। जिलाधीश महोदय को नगरपालिका की रकम को किस प्रकार खर्च किया जाय, यह बताने का अधिकार नहीं है। इस पर मि. गोप ने, जो चेक लेकर आये थे, उसे सामने से उठा लिया और यह कहते हुए कि ऐसी अवस्था में मैं यह चेक वापस ले जाता हूँ, उसे वापस ले गये।

हमारे सामने एक मुद्दा आ गया। तुरत कोतवाली में मि. गोप के नाम से म्युनिसिपल फंड जबरन ले जाने का डकैती का आरोप दर्ज करवा दिया गया तथा बिहार के प्रमुख दैनिक पत्रों में इसकी खबर भिजवा दी गयी। सरकार के सभी मंत्रियों के पास भी इस सूचना की प्रतियाँ प्रेषित कर दी गयी। पत्रों के लिए यह बड़ी गर्म खबर थी और उन्होंने दूसरे दिन मोटे-मोटे कालमों में अपने प्रथम पृष्ठ पर इसे प्रकाशित किया। हमारी सूचनाएं तो सरकारी दफ्तरों में उलझ रही होंगी पर अखबारों की खबर तो मंत्रियों के सामने थी और उनकी नींद हराम कर रही थी।

दूसरे दिन दोपहर में गोप साहब चेक वापस लेकर हमारे दफ्तर में आये और उसे वापस करने का प्रयत्न करने लगे। मैंने कहा कि अब तो डकैती के मुकदमे में यह साक्ष्य के रूप में जायगा। आप इसे अपने पास ही रक्खें। गोप साहब की दशा देखने लायक थी। मेरे अन्य साथी भी इकट्ठे हो गये। अंत में सब के कहने-सुनने पर और गोप साहब की दशा पर तरस खाकर वह चेक वापस ले लिया गया और कोतवाली से केस उठा लिया गया। संध्या समय स्वायत्त शासन-विभाग के मंत्री महोदय का, जिनके बल पर शिक्षक हड़ताल पर थे, फोन आया कि बकाया टैक्स का चेक आपको वापस मिला कि नहीं। मेरे हाँ कहने पर उन्होंने संतुष्ट होकर फोन रख दिया परंतु उनके दिल में जो खार था उससे हम कैसे बच सकते थे ! जल में रहकर मगरमच्छ से नहीं बचा जा सकता। मंत्री महोदय ने शिक्षकों की हड़ताल से उत्पन्न परिस्थिति में गया नगरपालिका को सरकारी नियंत्रण में लेने का प्रस्ताव मंत्रिमंडल की बैठक में रखा। कृष्णवल्लभ बाबू ने इस पर कहा, 'एक निर्णय 15 दिन पूर्व लिया गया है, उसका परिणाम कुछ काल तक देखना चाहिए।' इस पर स्वायत्त-शासन-मंत्री भोला पासवान ने अपना त्यागपत्र देने की धमकी दी और विवश होकर अन्य सभी सदस्य मौन हो गये। एक छोटी-सी बात के लिए मंत्रिमंडल में संकट की स्थिति आ जाय, यह कोई नहीं चाहता था। मैंने भोला पासवान से मिलने के बाद यह समझ लिया था कि नगरपालिका को भंग होने से बचाना कठिन है फिर भी कृष्णवल्लभ बाबू और अनुग्रह बाबू, जो दोनों मंत्रिमंडल के दोनों गुटों के नेता थे, की सहायता से इस संकट से उबरने की आशा नहीं छोड़ी थी। इसके पूर्व मैंने एक पुस्तिका 'गया नगरपालिका के साढ़े तीन वर्ष' नामक प्रकाशित कर के आँकड़ों के बल पर यह प्रमाणित किया था कि टैक्स-संग्रह के मामले में हमारा रेकार्ड हमारे पहले के सरकारी नियंत्रण के काल की तुलना में किसी प्रकार खराब नहीं था। मैंने उसमें सरकार की उपेक्षा के प्रमाण-स्वरूप यह भी दिखाया था कि जब कि हमारे पहले सरकारी नियंत्रण के पाँच वर्षों में 60-70 हजार रुपये प्रतिवर्ष सड़कों की मरम्मत के लिए नगरपालिका को दिये जाते थे, हमारे 3-4 वर्षों की अवधि में एक पैसा भी नहीं दिया गया था। इसके साथ ही मैंने गोवधबंदी, टैक्स की सहूलियत और जल-वितरण के अपने कार्यकलापों का विस्तृत वर्णन भी उसमें किया था। मैंने उक्त पुस्तिका, विधानसभा के भवन में जाकर, प्रत्येक एम. एल. ए. और एम. एल. सी. के हाथ में पकड़ा दी थी परंतु इन सब बातों को कौन सुनता है! अनुग्रह बाबू ने मुझे बताया कि अंग्रेजी हुकूमत में जब वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन थे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को भी झूठा आरोप लगाकर भंग कर दिया गया था। ईसप की भेडिये और मेमने की कहानी कौन नहीं जानता!

राँची से लौटकर हम लोगों ने अपने को नगरपालिका के भंग होने की स्थिति के लिए तैयार कर लिया। भोला पासवान का अपनी पत्नी से संबंध-विच्छेद हो चुका था और गया नगरपालिका की एक महिला कर्मचारी से उनके संबंधों की चर्चा थी। उस कर्मचारी को उन्होंने ही जोर देकर अनिवार्य बालशिक्षा के निरीक्षक के पद पर मुझसे गया नगरपालिका में नियुक्त करवाया था। मैंने उसे भी, डूबते को तिनके का सहारा समझकर, भोला के पास भेजा। परंतु उसने लौट कर मुझे बताया कि भोला ने कहा है, 'तुम्हारी नौकरी कोई नहीं छू सकता। राजनीति में पड़ने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है।' सारी बातें प्रतिकूल जा रही थीं। अंत में कृष्णवल्लभ बाबू का फोन जब मंत्रिमंडल की बैठक के बाद नगरपालिका को भंग करने के संबंध में मिल गया तो हमने एक आवश्यक बैठक करके यह निर्णय लिया कि सरकार के विमाता जैसे व्यवहार के कारण हम नगरपालिका को चलाने में असमर्थ हो रहे हैं इसलिए अच्छा है कि वह इसको भंग करके इसका प्रशासन अपने हाथ में ले ले। इस प्रस्ताव के तीसरे दिन सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी आ गया और नगर पालिका का अधिग्रहण सरकार द्वारा कर लिया गया।

गया लौजिंग हाउस कमेटी

जहाँ तक धार्मिक यात्रियों के लिए बनी गया नगर की, धार्मिक-क्षेत्र के संरक्षण की समिति (गया लौजिंग हाउस कमेटी) का प्रश्न है, मैं उसमें मात्र एक सदस्य था और सारा कार्य जिलाधीश करते थे। फिर भी मेरे सुझाव पर मंदिर के सामने एक बड़े हॉल का निर्माण यात्रियों की सुविधा के लिए कर दिया गया तथा मैंने विष्णुपद-मंदिर तक मोटर पहुँचने के लिए एक चौड़ी सड़क भी बनवायी क्योंकि मंदिर तक गलियों से मोटर नहीं जा सकती थी और उसे मंदिर के पीछे बहुत दूर रुकना होता था। यह सड़क मेरे नगरपालिका से हटने के बाद ही चालू हुई।

गया म्यूजियम की स्थापना

हिंदू धर्म के प्राचीन पौराणिक गया क्षेत्र में, जो बुद्धधर्म का भी केंद्र रहा है, 10 वीं, 11 वीं शताब्दी की बुद्ध और हिंदू मूर्तियाँ बिखरी पड़ी थीं। मैंने उन्हें संगृहीत करके गया नगर में नगरपालिका की ओर से गया म्यूजियम की स्थापना कर दी जो अब सरकारी सहायता से संवर्धित होकर बहुत बृहत् आकार ले चुका है।